''पंडित दीनदयाल उपाध्याय एवं महामना मदन मोहन मालवीय के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन-भारतीय लोकतंत्रात्मक परिवेश के संदर्भ में''

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी
की पी.एच.डी. (शिक्षा शास्त्र) में
उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध प्रबन्ध
2004

शोध निर्देशक-
डा0 जे0 एल0 वर्मा
एम.ए. (भूगोल), एम.एड., पी.एच.डी.
वरिष्ठ रीडर - बी.एड. विभाग
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी
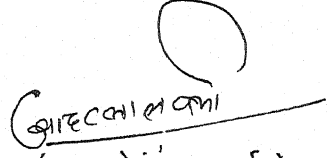
शोधार्थी-
वीरेन्द्र सिंह यादव
एम.ए. (इतिहास), एम.एड.
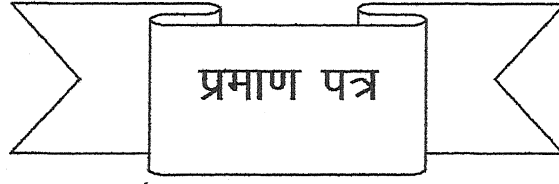
मैं प्रमाणित करता हूँ कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध जिसका शीर्षक " पंडित दीनदयाल उपाध्याय एवं महामना मदन मोहन मालवीय के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययनः भारतीय लोकतन्त्रात्मक परिवेश के सन्दर्भ में " , बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी की पी0एच0डी0उपाधि हेतु श्री वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है।

यह मेरे निर्देशन एवं निरीक्षण में श्री वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा सम्पादित स्वतंत्र एवं मौलिक कार्य है। मैं इनके उज्जवल भविष्य की कामना करता हूँ।

(डा0जे0एल0वर्मा)
एम0ए0, एम0एड0,
रीडर– बी0एड0 विभाग
बुन्देलखण्ड कालेज,झाँसी।
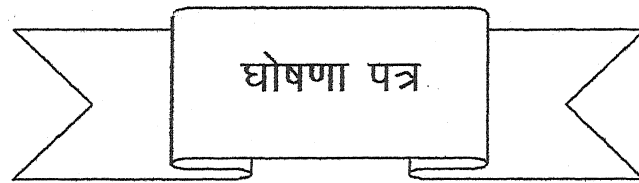
मैं यह घोषणा करता हूँ कि प्रस्तुत शोध कार्य शीर्षक– " पंडित दीनदयाल उपाध्याय एवं महामना मदन मोहन मालवीय के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययनः भारतीय लोक तन्त्रात्मक परिवेश के सन्दर्भ में। " मेरा स्वंय का मौलिक कार्य है जो अभी तक अप्रकाशित है जिसे मैं मूल्यांकन हेतु विश्वविद्यालय में प्रस्तुत कर रहा हूँ।

वीरेन्द्र सिंह यादव

शोधकर्ता

(वीरेन्द्र सिंह यादव)

एम0ए0, एम0एड0

प्राक्कथन

अनुवांशिक रूप से शिक्षा जगत से जुड़े होने के कारण यह स्वाभाविक ही था कि मेरी वैचारिकी की दिशा शिक्षोन्मुखी हो। मेरे अनुभव एवं व्यवहारिक जीवन ने इन विचारों को और अधिक दृढ़ता प्रदान की। इसी वैचारिकी और धारणा के वशीभूत होकर जब मैने चिन्तन प्रारम्भ किया तो स्वतंत्रता संग्राम के अनेक अग्रेंज सपूतों में से एक, जिन्होंने राजनैतिक ,सामाजिक तथा शैक्षिक क्षेत्रों में समान दक्षता से कार्य किया मेरे दृष्टि पटल पर अपना चित्र साकार करने में सफल हुए, वे थे परम पूज्य पंडित महामना मदनमोहन मालवीय एवं पण्डित दीनदयाल उपाध्याय। इसी चित्र के सजीव रंगों से मुग्ध होकर मैने उनमें से मात्र एक " शिक्षा" का अध्ययन करने का प्रयास किया। इस क्षेत्र में कार्य करने की प्रेरणा मुझे अपने अन्तः कारण से हुई तथा मुझे इस कार्य को सम्पादित करने हेतु उचित मार्ग दर्शन एवं दिशा निर्देशन आदरणीय डा0जे0एल0वर्मा, रीडर (शिक्षा विभाग) बुन्देलखण्ड कालेज झाँसी, उ0प्र0 से प्राप्त हुआ, फलस्वरूप मैंने अपने ह्दय गत भावानुकूल महापुरूष एवं शिक्षाविद महामना मदन मोहन मालवीय एवं पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययनः लोकतंन्त्रात्मक भारतीय परिवेश में अध्ययन कार्य प्रारम्भ किया।

इस शोध कार्य को करने की प्ररेणा मुझे अपने सहयोगी बन्धुओं से भी प्राप्त हुई,जो अन्य भारतीय शिक्षा शास्त्रियों की तुलना पाश्चात्य शिक्षाविदों के साथ कर रहे थे। उनसे चर्चाओं के मध्य जन–जन में जागरण का संदेश प्रस्तुत करने वाले महान उन्नायको के बीच भारतीय संस्कृति शिक्षा और धर्म की प्राचीरों पर एक भव्य चित्र झलकता है। जो रचेत वस्त, भोली मुखाकृति, उन्नत ललाट, उदार दृष्टि और

उज्जवल ह्दय से कण–कण में व्याप्त है। इस चित्र में इतिहास भी है और दर्शन भी है, उसमें साहित्य भी है और संस्कृति भी है उसमें धर्म भी है और शिक्षा भी है उसमें व्यक्तित्व भी है और समाज भी है, उसमें क्रान्ति भी है और शान्ति भी है। यह भव्य चित्र मेरे अन्तःकरण में पूज्यवाद महामना मदन मोहन मालवीय एवं पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी का चिर्तित हो रहा है। मालवीय एवं उपाध्याय जी को हम हिन्दुत्व के प्राण एवं भारत की आत्मा की संज्ञा प्रदान कर सकते है। इनके इस विराट स्वरूप के एक अंश ''शिक्षा'' को लेकर मैने मालवीय जी एवं उपाध्याय जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के साथ ही उनके शैक्षिक विचारों का आधुनिक परिवेश में सांगोपांग आलोचनात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया है। मेरे विचार से मेरा यह प्रयास सूरज को दीपक दिखाने के समान ही है। इस शोध अध्ययन कार्य हेतु प्ररेणा प्रदान करने हेतु मैं अपने मित्रों एवं सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करता हूॅ जिन्होंनें समय–समय पर मुझे परामर्श दिये ।

एशिया महादीप के अद्वितीय विश्वविद्यालय '' काशी हिन्दू विश्वविद्यालय'8 के संस्थापक एवं कुलपति महामना मदन मोहन मालवीय जी हमारे देश के उन नव रत्नों में से एक है, जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में देश का सफल नेतृत्व करने के साथ ही शिक्षा के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था शिक्ष जगत में मालवीय एवं उपाध्याय जी ने एक ऐसी वैचारिकी एवं विराट और व्यापक शिक्षा प्रणाली को जन्म दिया, जिसका व्यैक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अन्र्तराष्ट्रीय क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है। इस ज्योतिशिखा ''विश्वविद्यालय '' ने न केवल मालवीय जी वरन् सम्पूर्ण राष्ट्र को गौरवान्वित किया है। नवीन जीवन मूल्यों के साथ पुरातन जीवन तथ्यों को सहसम्बन्धित करना मालवीय एवं उपाध्याय जी की शिक्षा का मूलाधार है, जिसके

द्वारा जीवन में सन्तुलन एवं समन्वयात्मकता का प्रादुभवि होता है। मालवीय जी की शिक्षा प्रणाली दो कालो के मध्य सेतु का कार्य सम्पादित करती है जिस पर चलकर व्यक्ति लक्ष्य की पूर्णता को प्राप्त करता है मालवीय एवं उपाध्याय जी समन्वय भावना के पुंज थे।

इस दुरूह एवं विशद कार्य को पूर्णता प्रदान करने में जिन जिन विद्धतजनों का सहयोग एवं अनुकम्पा मुझे प्राप्त हुई, उनके प्रति में श्रृद्धा से नतमस्तक हो।

सर्वप्रथम मैं बुन्देलखण्ड कालेज के शिक्षा विभाग के डा0जे0एल0वर्मा जी के प्रति ह्दय से आभार व्यक्त करता हूॅ जिनके सहज एवं बौद्धिक मार्गदर्शन एवं निर्देशन को प्राप्त कर मैं इस दुर्बर एवं व्यापक कार्य को पूर्ण रूप प्रदान करने में सफलता प्राप्त कर सका।

मैं ''मालवीय उन्नत आश्रम लखनऊ'' के संस्थापक एवं अध्यक्ष वैद्य श्री अनन्तराम सांख्यधर जी का श्रृद्धा सहित आभारी हूॅ जिन्होंने मालवीय जी के सम्बन्ध में अनमोल जानकारी प्रदान की जिसके आधार पर मैं अपने निर्धारित लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सका।

मैं राष्ट्रीय अभिलेखागार दिल्ली तथा इलाहाबाद के अधिकारियों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूॅ। जिन्होंने सदैव ही मुझे, मालवीय जी सम्बन्धी अभिलेख तथा अन्य उपयोगी सामग्री उपलब्ध कराकर इस कार्य में सहयोग प्रदान किया। उन्होंने मुणे बहुत से दुर्लभ अभिलेख जैसे 1910, 1915, 1919 की सुप्रीम लेजिसलेटिव कौसिल की प्रतियां देखने को दीं। वहॉ मुझे मालवीय जी द्वारा श्री परमानन्द को लिखे पत्र एवं उपाध्याय जी द्वारा उनके मामा को लिखे पत्र की प्रति भी देखने को मिली।

मैं आभारी हूँ दैनिक "आज" के मालवीय एवं उपाध्याय जी के विशेषांक का जिससे मुझे सामग्री एकत्रित करने में सहयोग मिली श्री रामनरेश त्रिपाठी जी की पुस्तक " मालवीय जी के साथ तीस दिन " से भी मैने काफी कुछ ग्रहण किया है। अतएव श्री त्रिपाठी के ऋण को भी स्वीकार करने में मुझे हर्ष होता है। इसके साथ ही मुझे हुमाऊं कबीर द्वारा लिखित पुस्तक इण्डियां विन्स फ्रीडम से भी काफी लाभ प्राप्त हुआ अतः मैं उनका भी आभारी हूँ।

इस शोध कार्य हेतु साहित्य संकलन में सबसे अधिक सहयोग मुझे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रकाशन विभाग से प्राप्त हुआ जहा। से मुझे मालवीय जी से सम्बन्धित स्मारिका, मालवीय जी की ऐतिहासिक जीवनी के दो खण्ड, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय का इतिहास (एस0एल0 द्वारा लिखित) महामना मदनमोहन मालवीय जीवन और नेतृत्व आदि महत्व पूर्ण , पुस्तके प्राप्त हुई जिनका मैंने अपने शोध कार्य में बार-बार उल्लेख किया है अतः काशी विश्वविद्यालय के प्रकाशन विभाग के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूँ।

पंडित दीनदयाल जी से सम्बन्धित साहित्य संकलन में सबसे अधिक ' लोकहित प्रकाशन ' लखनऊ , राष्ट्र धर्म पुस्तक प्रकाशन लखनऊ। अभ्युदय समाचार पत्र प्रयाग से प्राप्त हुआ जहॉ से मुझे उपाध्याय जी से सम्बन्धित राष्ट्र चिन्तन स्मारिका, ऐतिहासिक जीवनी, उनके द्वारा जनसंघ में किये गये अद्वितीय कार्य अभिलेख एवं उपाध्याय जी के जीवन और नेतृत्व आदि महत्वपूर्ण पुस्तके प्राप्त हुई जिनका मैने शोधकार्य में बार-बार उल्लेख किया है अतः लोकहित एवं राष्ट्रधर्म्र पुस्तक प्रकाशन विभाग के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूँ।

मैं अपनी कृतज्ञ भावांजलि श्री डा0वर्मा, श्री कृष्णदत्त द्विवेदी तथा श्री पदमकान्त मालवीय के प्रति समर्पित करता हूँ, जिन्होंनें क्रमशः ''पण्डित मदन मोहन मालवीय एसोसियोपालीटकल स्टडी'' भारतीय पुर्नजागरण और मदनमोहन मालवीय तथा मालवीय जी की जीवन झलकियां, उपाध्याय जी के जनसंघीय अध्यक्षणीय अभिभाषण एवं उनके लेख नामक पुस्तके एवं पत्र प्रदान करके मेरे ज्ञान कोष को शक्ति प्रदान कर इस कार्य में सहयोग प्रदान किया।

अन्त में मैं अपने सभी मित्रों, सहयोगियों के मित्रवतः सहयोग हेतु अपना विनम्र आभार व्यक्त करता हूँ जिसने मुझे सदैव प्रोत्साहित किया। इसके अतिरिक्त मैं उन सभी पुस्तक प्रकाशकों, समाचार पत्र प्रकाशकों एवं इस शोध कार्य का अंकण का विशेष आभारी हूँ जिन्होंने मुझे इस शोध कार्य को पूर्णता प्रदान करने में अपना हार्दिक सहयोग प्रदान किया।

(वीरेन्द्र सिंह यादव)
शोधकर्ता

अनुक्रमाणिका

प्राक्कथन पृष्ठ संख्या

अध्याय तृतीय

प्राक्कथन पृष्ठ संख्या

अध्याय चतुर्थ

प्राक्कथन | पृष्ठ संख्या

प्राक्कथन		पृष्ठ संख्या

अध्याय सप्तम्

अध्याय प्रथम

प्रस्तावना :–

समस्त सृष्टि के रचनाकर परमपिता परमेश्वर ने मनुष्य के रूप में पं0दीनदयाल उपाध्याय एवं मदन मोहन मालवीय दोनो ही महापुरूषों को भारत में इस प्रकार की परिस्थितियों में जन्म दिया कि भारत परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था चारो ओर राजनैतिक षडयंत्रों एवं अत्याचार का बोल बाला दिख रहा था, भारतीय संस्कृति में निरन्तर गिरावट आ रही थी। इस प्रकार के पर्यावरण एवं परिस्थितियों में भारतीयों का मार्गदर्शन करना एवं उनमें व्याप्त अन्धकारता को दूर करने और भारतीय जन समुदाय को शिक्षा की ओर प्रेषित करने के लिए जैसे कार्यो को ,उपाध्याय जी एवं मालवीय जी जैसे महापुरूषों ने जन्म लेकर भारतवासियों का शैक्षिक मार्गदर्शन कर कल्याण किया।

अतः यह बात र्निविवाद रूप से सत्य है कि व्यक्ति के मानसिक विकास में शिक्षा की उल्लेखनीय भूमिका है शिक्षित व्यक्ति राष्ट्र को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान कर सकता है। [1]

सन 1947 के बाद जब अग्रेंजों के चंगुल से छूटे, जो हमें चाहिए था कि हम अपनी स्वतंत्र शिक्षा नीति को कार्यान्वित करते । इस सम्बन्ध में पं0दीनदयाल जी उपाध्याय एवं महामना जी ने चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा कि "देश स्वतंत्र होने के बाद स्वाभाविक रूप यह प्रश्न हम सब लोगों के सामने आ जाना चाहिए कि अब हमारे देश की दशा क्या होगी? किन्तु सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह हे कि देश की स्वतंत्रता के बाद भी जितने गम्भीर रूप से इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए था उतने गम्भीर रूप से लोगों ने विचार नहीं किया [2]

---

(1) संदेश 10+2+3 शिक्षा प्रणाली विशेषांक 1977 कमलापत त्रिपाठी (तत्काल रेल मंत्री) भारत सरकार
(2) राष्ट्रवाद की सही कल्पना– सकात्म मानवदर्शन

पंडित जी की चिन्ता और अधिक बढ़ जाती है जब वह देखते है कि राष्ट्र के सत्तासीन नेता उपरोक्त प्रश्न का हल ढूढ़ने के लिए गहराई से कोई प्रयास नहीं कर रहे " राष्ट्र का मार्गदर्शन करने वाले तथा राजनीति के क्षेत्र में काम करने वाले अधिकांश व्यक्ति इस प्रश्न की ओर उदासीन है। फलतः भारत की राजनीति अवसर वादी और सिद्धान्तहीन व्यक्तियों का अखाड़ा बन गयी है। राजनीतिज्ञों तथा राजनीतिक दलों के न तो कोई सिद्धान्त एवं आदर्श है न कोई आचार संहिता।[1] इस देश के भाग्यविधाता वे लोग बने जिनकी शिक्षादीक्षा कैम्ब्रिज और आक्सफोर्ड में हुई थी तथा जो अपनी मात्रभाषा में सोचने, बोलने और लिखने के बजाय अग्रेंजी में सोचने, बोलने और लिखने में गर्व अनुभव करते थे वे कैसे यहां की संस्कृति को प्रतिष्ठा दे सकते थे, उन्होंने भारत को इग्लैण्ड और अमेरिका जैसे परिश्चमी देशों का नकलची बनाने की चेष्टा की। गांधी के घोषित अनुयायी होते हुए भी उन्होंने गांधी के सारे सिद्धान्तों की हत्या की। भारत की अध्यात्मिक संस्कृति पर उन्होंने पश्चिम की भौतिकवादी संस्कृति को तरजीह दी ।

" आज भारत के शिक्षित वर्ग के जीवन मूल्यों पर पश्चिमी का यह प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है । हमें निर्णय करना पड़ेगा कि यह प्रभाव अच्छा है या बुरा। जब तक अग्रेंज थे तब तक तो हम स्वदेशी की भावना से अग्रेजियत को दूर रखने में ही गौरव समझते थे किन्तु अब जब अग्रेंज चला गया है तब अग्रेजियत पश्चिम की प्रगति का धोतक एवं माध्यम बनकर अनुकरण की वस्तु बन गयी है। [2]

पं०जी ने चेतावनी भरे शब्दो में कहा है कुछ ऐसे भी है जो पाश्चात्य राजनीति एवं अर्थनीति की दिशा को ही प्रगति की दिशा समझते है और इसलिए भारत पर वहां की स्थिति का प्रक्षेपण करना चाहते है अतः भारत की भावी दिशा का निर्णय

---

(1) तदैव पृष्ठ–5
(2) राष्ट्रवाद की सही कल्पना– एकात्मक मानवदर्शन ...... पं०दीनदयाल

करने से पूर्व यह उचित होगा कि पश्चिम की राजनीति के वैचारिक अधिष्ठान तथा उनकी वर्तमान पहेली का विचार कर लें, विचारोपरान्त हम पायेगें कि विश्व ऐसी स्थिति में नहीं है कि हमारा कुछ मार्गदर्शन कर सके वह तो स्वंय चौराहे पर है ऐसी अवस्था में हम उससे किसी पकार का मार्गदर्शन नहीं पा सकते " (1)

आज शिक्षा अपने मूल उद्देश्यों से भटक गयी है आज भारतीय शिक्षा परिवेश इतना दूषित एवं कुलषित हो गया है कि इससे भय लगने लगा कि कही यह राष्ट्र के पतन के गर्त में न लें जावे। भारत जो अतीत में ज्ञान स्थापना स्थल माना जाता था जहां विदेशों से लोग केबल ज्ञान पिपासा को शान्त करने के लिए आते थे , आज उस अग्रगण्य शिक्षक राष्ट्र ने अपनी स्थिति काफी दयनीय बना ली है। शिक्षा में पतन का यह क्रम जो मध्यकाल (मुस्लिमकाल) से प्रारम्भ हुआ आज तक रूक नहीं पा रहा है यद्यपि इसको रोकने के प्रयास स्वरूप ब्रिटिसकाल में अनेकों आयोग तथा समितियां नियुक्त की गयी ताकि भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में कुछ प्रगति हो सके, किन्तु सभी तत्कालीन प्रयास व्यर्थ सिद्ध हुए। आधुनिक शिक्षा के क्षेत्र में स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व अनेक भारतीय शिक्षा विदो, राजनीतिक नेताओं तथा समाज सुधारको ने अपने प्रयासों के माध्यम से शिक्षा के गिरते स्तर को उठाने का प्रयास किया, अनेकों आयोगों की पुनः नियुक्त हुई। महात्मा गांधी ने बेसिक शिक्षा प्रारम्भ की महर्षि दयानन्द स्वरस्वती ने सामाजिक तथा शैक्षिक उत्थान के लिए डी0ए0वी0 संस्थाएं प्रारम्भ की तथा रामकृष्ण मिशन द्वारा अनेक संस्थाए प्रारम्भ की गयी। ऐसे ही समय में भारत भूमि पर आशा की किरण के रूप में सन् 1861 में महामना पंडित मदन मोहन मोलवीय अवतरित हुए महामना ने भारतीय सामाजिक दुर्दशा का मुख्य कारण

---

(1) तदैव पृष्ठ 7–8 और 12

अशिक्षा और अज्ञानता को माना, इस अज्ञान तिमिर को आलोक में परिणित करने के लिए महामना ने विशाल काशी हिन्दू विश्व विद्यालय की स्थापना की।

अध्ययन का लक्ष्य एवं आवश्यकता :—

किसी भी राष्ट्र के समुचित विकास के लिए उसको अपने सांस्कृतिक आदेशों के अनुकूल आगे बढ़ने हेतु उचित शिक्षा की महती आवश्यकता होती है। क्योंकि शिक्षा के द्वारा ही समाज में बांछित परिवर्तन लाए जा सकते है इसराइल जैसे छोटे देश से हमें प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिए कि हमारी दिल्ली की आबादी से सभी कम चारो ओर से मुस्लिम अरब देशों से घिरा हुआ सफलता पूर्वक सीना तान करके खड़ा है। इसका केवल एक ही कारण है कि स्वतंत्र होते ही उसने अपनी पुरानी हिन्दू भाषा को ही अपनी राष्ट्र भाषा बनाया और एक हम ही जिनके आधुनिक भारतीय शिक्षा की आधारशिला अग्रेजों के द्वारा रखी गयी थी शिक्षा शास्त्री मैकाले ने कहा था कि " वर्तमान में हमें एक ऐसा वर्ग बनाने का प्रयास करना है जोर रक्त और रंग में तो भारतीय हो पर स्वभाव विचारों ,नैतिकता और बौद्विकता में अग्रेंज। ताकि वे हमारे और करोड़ो भारतीय के बीच में दुभाषिए का काम कर सके जिसके ऊपर हम शासन करते है।(1)

इसी आधुनिक शिक्षा के ऊपर टिप्पणी करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने मद्रास मे अपने एक भाषण में कहा था। " प्रथमतः कोई व्यक्तित्व निर्माण के लिए यह शिक्षा नितान्त अनुपयोगी है यह समग्रता में मात्र नकारात्मक शिक्षा है। नकारात्मक शिक्षा या प्रशिक्षण मृत्यु से बदत्तर होता है विद्यालय में प्रवेश के पश्चात बालक जिस प्रथम तथ्य से परियिचत होता है वह यह है कि उसके पिता मूर्ख है दूसरा यह कि उसके पितामह पागल है तीसरा यह कि उसके अध्यापक ढकोसलावादी है और चौथा यह

---

(1) मैकाले का विवरण पत्र 1835 व निस्यन्दन सिद्धान्त— भारतीय शिक्षा का इतिहास— पी0डी0पाठक पृष्ठ—87

कि उसके सारे धर्म ग्रन्थ झूठ का संग्रह है। सोलह वर्ष की आयु तक वह नरक की गहरी बन जाता है ,निर्जीव और रीढ़हीन।

शोधकर्ता का ध्यान महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय के ऊपर केन्द्रित हुआ, शोधकर्ता के अन्तकरण मे एक धारणा उत्पन्न हुई कि ऐसे सन्त पुरूष के प्रयास एवं प्रयोग निष्फल नहीं हो सकते। सम्भव है कि सामाजिक परिस्थितियों में कुछ परिवर्तन आ गया हो किन्तु देखने से ज्ञात होता है कि समाज की मूल आवश्यकताए तो अभी भी वही है जो पूर्व में थी इसलिए शोधकर्ता ने यह आवश्यक समझा कि महामना एवं उपाध्याय जी के शैक्षिक विचारों का विषय अध्ययन किया जाना चाहिए।अनेक शिक्षा विदों के मध्य महामना के ऊपर शोधकर्ता अपना ध्यान इसलिए भी केन्द्रित कर सका क्योंकि महामना एवं उपाध्याय जी ही ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने न केवल हिन्दू वरन् समस्त भारतीयों को लाभान्वित करने का प्रयास किया।

शोधकर्ता ने जब अपने इस सोच को मूर्ति रूप देने का प्रयास किया तो पाया कि शिक्षा शोध क्षेत्र में अनेक पाश्चात्य शिखा शास्त्रियों जैसे हीगल, फ्रोवेल, प्लेटो, रूसो, डी0वी0 तथा अनेक भारतीय शिक्षा शास्त्रियों जैसे विवेकानन्द ,गांधी ,टैगोर ,अरविन्द आदि पर विपुल मंथन किया गया है पाठ्यक्रम में इन्ही लोंगों को समुचित स्थान दिया गया है इन्ही को कक्षा में पढ़ाया जाता है किन्तु जिस व्यक्ति का भारतीय शिक्षा को उन्नतिशील बनाने में विशेष योगदान है उसकी पाठ्यक्रम में भी चर्चा नगण्य ही है, मात्र कही–कही राजनैतिक क्षेत्र में उनके कार्यो का उल्लेख मिलता है अतः शोधकर्ता ने अपने कर्तव्य के रूप में यह आवश्यक समझा कि ऐसे महान व्यक्तित्व के जो इतिहास के पृष्ठों में छिप गया है, शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाएं ताकि उनके शैक्षिक चिन्तन तथा आदर्शो का शिक्षा

---

(1) दैनिक जागरण 17 अप्रैल 1994 शिक्षा बनाम सरकारी प्रचार– प्रस्तुति दीपक बाजपेयी

जगत को यथासम्भव अधिक से अधिक लाभ हो सके शोधकर्ता को इस क्षेत्र में कार्य करने की प्रेरणा मूल रूप से प्रश्चात्य शिक्षाविदो एवं भारतीय शिक्षा विदों के अध्ययन से ही प्राप्त हुई क्योंकि उसने पाया कि इन सबके मध्य वह प्रकाशदीप तो है ही नहीं, जिससे आज सम्पूर्ण राष्ट्र प्रकाशित एवं गौरवान्वित हो रहा है महामना एवं पं0उपाध्याय जी ने अपने शैक्षिक विचारों एवं आदर्शो के अनुरूप लोकतन्त्रात्मक परिवेश के सन्दर्भ में सम्पूर्ण राष्ट्र को लाभान्वित करने की अभिलाषा से प्रेरित होकर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की जिसे हम भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में एक कीर्तिमान की संज्ञा दे सकते है।

महामना जी एवं पं0जी एक विशिष्टि आत्म विश्वास की प्रतिमा थे किसी भी बड़े से बड़े काम को उन्होंने अपने जीवन में इसी आत्मविश्वास के सम्बल से सदैव सुगमता से पूरा किया। साधन हीन होते हुए भी उन्होंने शिखा के क्षेत्र में इतने बड़े विश्वविद्यालयों को अस्तित्व प्रदान किया। महामना ने इस विश्वविद्यालय का निर्माण देश की शिक्षा के विकासार्थ किया था उनके मस्तिष्क में तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए स्वालम्बी शिक्षा का वृहत उद्देश्य स्पष्ट रूप से अंकित थी।

महामना एवं पंडित जी प्राचीन भारतीय गौरव गरिमा को अर्वाचीन भौतिकवाद से जोड़कर भारतीय संस्कृति का सुविकिसित एवं सुदृढ़ भवन निर्मित करना चाहते थे ताकि भारत को अपना प्राचीन गौरव पुनः प्राप्त हो सके। अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए महामना एवं पंडित जी ने भव्य एवं सुन्दरतम् योजनाओं का निपरूपण किया जो उनके जीवनकाल से लेकर आज तक गतिशील है और भविष्य में भी निरन्तर गतिमान रहेगी, इनका शिक्षा दर्शन मात्र एकांगी न होकर सर्वागीण स्वरूप वाला था जिसका सांगोपांग अध्ययन वस्तुतः महामना एवं पंडित जी की शैक्षिक कार्यप्रणाली

एवं रूप रेखा को समझकर वर्तमान परिवेश में अपना कर जनमानस को उन्नतशील नव दिशा प्रदान कर सकता है।

अतः शिक्षा प्रणाली और पाठ्यचर्चा मे सुधार के सतत प्रयत्न होते आये है शिक्षा को अनेकोबार पुर्नसमीक्षा की सकरी गलियों से गुजरना पड़ा। पर उसक समीक्षक और मागदर्शक प्रायः वे ही थे जो मैकाले की रीढ़हीन वुद्धिजीवी निर्माता शिक्षा व्यवस्था के देश के शिकार थे। कुल मिलाकर वर्तमान शिक्षा का स्वरूप जो हमारे सामने उभरता है वह नितान्त औपचारिक है जिसमें शिक्षा शुद्ध कृतिम विधियों से आगे बढ़ती है और पुस्तकीय ज्ञान रटाकर शिक्षार्थी को पंडित बना देना जिसका लक्ष्य है कि जबकि शिक्षा का उद्देश्य केवल कतिपय विषयों की जानकारी देना मातृ नही है। शिक्षा के द्वारा बालक का शारीरिक मानसिक, बौद्विक ,नैतिक तथा अध्यात्मिक विकास इस प्रकार होना चाहिए कि वह अपने पैरो पर खड़ा होकर समाज और राष्ट्र के प्रति अपने उत्तरदायित्व का पूरी तरह से निर्वाह कर सके। इस प्रकार बालक का सम्पूर्ण विकास ही शिक्षा का उद्देश्य है।

उपरोक्त समस्त बातों का गम्भीरता पूर्वक चिन्तन के उपरान्त शोधार्थी के मस्तिष्क मे यह विचार उत्पन्न हुआ कि विश्व के प्रत्येक देश की अपनी अपनी विशेषताएं है, और हमारे राष्ट्र का भी अपना अलग व्यक्तित्व है। हमें अपने राष्ट्र के व्यक्तित्व के अनुरूप चतुर्दिक विकास करना है इसके लिए आवश्यक है कि हम प्रगति की दौड़ में पीछे न रहे। अपने विद्यालयों मे विज्ञान की शिखा पर बल दे और इस शिखा को अपने अध्यात्मिक विरासत से सन्नद्ध करे। अतः पंडित उपाध्याय जी एवं महामना जी की इस बात का ध्यान अवश्य होगा कि " विश्व भर में मनुष्यों के शरीर के अंगो की किया समान होते हुए भी जो औषधि इग्लैण्ड में कारगार होती है वह भारत में भी उपयोगी सिद्ध होगी, यह निर्विवाद नहीं कहा जा सकता................. इसलिए वाहर की जितनी भी बाते है उनको हम उसी प्रकार से लेकर अपने देश में

चले यह तो समीचीन नहीं होगा उसके द्वारा हम कभी प्रगति नहीं कर सकेगें.........
हम सम्पूर्ण मानव जाति के ज्ञान और उपलब्धियों का संकलित विचार करें इन तत्वों में जो हमारा है उसे युगानुकूल और जो बाहर का है उसे देशानुकूल ढालकर हम आगे चलने का विचार करे।" (1)

वी0डी0जैन कन्या महाविद्यालय की प्राचार्य डा0 के मोहनी गौतम इस कथन का सन्दर्भ लेते हुए कि " हमारे यहां की शिक्षा व्यवस्था अग्रेंजी की दी हुई हे भारतीय परिवेश के अनुरूप इसमें परिवर्तन ही नहीं किये गये "(2) शोधार्थी ने वर्तमान भारतीय राष्ट्रीय परिवेश के लिए उपयुक्त प्रखर राष्ट्र भक्त एवं महान चिन्तक " पं0जी0 एवं महामना जी के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन, भारतीय लोकतन्त्रात्मक परिवेश के सन्दर्भ में " अध्ययन करने का निश्चय करते हुए निम्न शोध समस्या का चयन किया है।

अध्ययन का महत्व :–

पंडित दीनदयाल उपाध्याय तथा महामना मदनमोहन मालवीय जी दोनो ही व्यक्तित्व समस्त समस्याओं के समाधन के लिए विचारों की प्रमुखता प्रदान करते थे। इसलिए उनके शिक्षा दर्शन का महत्वपूर्ण पक्ष सामाजिक दर्शन की है। अतः दोनो ही निर्विवाद रूप से समााजिक एवं शैक्षिक दार्शनिक के रूप में प्रतिष्ठित है। इतः दोनो के विचारों का अध्ययन करना आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है।

विश्व के अनेकों कर्मयोगियों ,मनीषियों एवं कर्णधारों ने समाज के लिए सर्वस्व अर्पण करने के बाद भी स्वंय के बारे में एवं अपने कार्यो के बारे में कुछ भी नहीं

---

(1) अपना देश अपनी परिस्थितियां– एकात्मक मानववाद पंडित दीनदयाल उपाध्याय पृष्ठ 15–16
(2) शिक्षा पद्वति हमारे अनुरूप नहीं है– दैनिक जागरण 17 अप्रैल 1994

लिखा, मानो उन्होंने समाज के लिए ही जन्म लिया हो उन्हीं महापुरूषों की परम्परा में पं0दीनदयाल उपाध्याय एवं मदन मोहन मालवीय को भी रखा जा सकता है पं0जी ने तो पर्याप्त मात्रा में लेखन कार्य किया है लेकिन शिक्षाविद के रूप में अपनी शैक्षिक विचारधारा को लिपिबद्ध नहीं किया। पं0 जी साहित्यक प्रतिभा के धनी थे उन्होंने पत्रकारिता तथा साहित्य सृजन का कार्य भी सफलता पूर्वक किया है राष्ट्रधर्म पांचजन्य तथा स्वदेश जैसे लोकपत्रों का सम्पादन किया, वे देश की एकता और अखण्डता के लिए पूरी तरह समर्पित थे। इन दोनो महापुरूषों ने अपने जीवन का हर क्षण को समाज सेवा में लगाया। उन्होंने परिस्थितियों से पराजित होकर सिद्वान्तो से कभी समझौता नहीं किया। निडर स्वभाव, मधुर वाणी किन्तु विचारों की दृढ़ता के धनी पंडित जी एवं महामना जी ने संषर्घपूर्ण जीवन में सर्दव कर्म की व्यवस्था को स्थापित किया उन्होंने व्यक्तिगत सुखसुविधा का कभी परवाह नहीं की वे सचचे अर्थो में कर्मयोगी थे। उनके नाम देश के उच्चतम आदर्श नेताओं के साथ बड़े ही आदरपूर्वक लिए जाते है विश्व भर में चलने वाले आज के सभी राजनैतिक ,सामाजिक तथा आर्थिक अधूरे वादों से ऊपर उठकर उन्होंने एक अनूठे मौलिक एवं सर्वांगपूर्ण एकात्मक मानववाद की अभिनव और व्यवहारिक परिकल्पनावादी जिसमें मानव के सर्वागीण विकास पर विशेष बल दिया गया है।

शोधकर्ता की दृष्टि से ऐसे महापुरूषों के विचारों का अध्ययन समाज एवं राष्ट्र के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा तथा इनके शैक्षिक विचारों से भारतीय शिखा को राष्ट्रीय चेतना प्राप्त होगी।

आज सम्पूर्ण जगत में पिछली किसी भी सदी से ज्यादा शिक्षा है, ज्यादा विद्यालय है लेकिन आप पिछली किसी भी सदी से ज्यादा अशान्ति है, दुख है, ज्यादा पीड़ा है, घृणा है, ईष्या है, जलन है। अतः निश्चित ही कहीं कोई बुनियाद में खराबी है और इस तरह की खराबी का दायित्व और किसी पर इतना ज्यादा नहीं है जितना

उन पर जिनका शिक्षा में सम्बन्ध है चाहे वह शिक्षक हो या शिक्षार्थी ।'' साविधा या विमुक्त में '' लेकिन वर्तमान शिखा हमकों मुक्त का मार्ग नहीं बताती हम लोगों को विद्यावान बनाएं , डाक्टर बनाएं, गणिता बनाएं लेकिन यह सब विद्या नहीं यह सब आजीविका के साधन और उपाय है। हम बच्चों को पडा काम कर रहे है हम केवल जीवकोपार्जन की कुशलता उन्हें सिखा रहे है शिक्षा से उनका कोई नाता नहीं जोड़ रहे है, शिक्षा का नाता है जीवन में श्रेष्ठतर मूल्यों का जन्म।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा है— कि '' हमें उस शिक्षा की आवश्यकता है जिसके द्वारा चरित्र का निर्माण होता है मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है। वुद्धि का विकास होता है और मनुष्य अपने पैरो पर खड़ा हो सकता है।'' (1)

कोई भी व्यक्ति केवल अपने ऊपर ही निर्भर करते हुए मनमाने ढंग से राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकता है। उसका चिन्तन, पर्यावरण में व्याप्त सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है उसके क्रिया कलापों पर देश और काल की गहरी छाया प्रतिवम्बित होती है उसे कतिपय सांस्कृतिक मर्यादाओं का अनुपालन करना होता है, कतिपय अन्याय महापुरूषों के विचारों को आत्म ज्ञात करना होता है ,बहुतों से सामंजस्य करते हुए कार्य सम्पादित करना होता है कोई भी चिन्तक सहयोग की इस प्रक्रिया में ही अपना योगदान करता है अतः प्रारम्भिक काल से ही भारतीय ऋषियों के साहित्य का अध्ययन करने से स्वयं ही, वीर सेनानियों , क्रान्तिकारियों और शिक्षाविदो के जीवन चरित्रों को जानने—सुनने की लालसा शोधकर्ता के मन में घर कर गयी थी इसी लालसा के वसीभूत होकर शोधकर्ता ने महामना एवं उपाध्याय जी के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन अपने अध्ययन का विषय बनाया है।

---

(1) आधुनिक भारतीय शिक्षा शास्त्री ''स्वामी विवेकानन्द'' शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक अध्ययन पृष्ठ—281

अतः भाड़े की शिक्षा प्रणाली अपनी परम्परा में नहीं बैठती ढेर सारे उदर पोषण के विषयों की भीड़ से उत्तम मानव का राष्ट्र के उत्तम अवयव का निर्माण नहीं होता इसके लिए ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है। जिसमें दृढ़ चरित्र, शरीर व मन की वलोपासना विशुद्ध ज्ञान और धर्म के शाश्वत तत्वों को प्रतिविम्बत करने जैसी पवित्र वातों के संस्कार वाल्यकाल से दृढ़ करते रहने की योजना ही इस दृष्टि से भारतीय मनीषियों द्वारा दिया गया चिन्तन शोधकर्ता को अत्यन्त महत्वपूर्ण समाचीन एवं युग तथा राष्ट्र के अनुकूल प्रतीत होता है जिन्होंने मानव जीवन का गहराई से अध्ययन करके शाश्वत सुख का मार्ग दिखाने वाला सर्वार्गीण दर्शन हमको दिया है। आधुनिक युग में स्वामी विवेकानन्द, मर्हिष अरविन्द, महात्मागांधी, रवीन्द्र नाथ टैगोर, पं0दीनदयाल उपाध्याय और महामनो जी जैसे विचारकों ने अपने अपने ढंग से उस भारतीय चिन्तन को प्रकट किया है हमारे पास वह भारतीय वैचारिक धरोहर '' एकात्मक मानव दर्शन '' के रूप में संकलित है।

एकात्मक मानवदर्शन के रूप में पं0दीनदयाल उपाध्याय मानव मास केलिए एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है जिससे प्रेरणा प्राप्त करके जीवन को भय,ईर्ष्या, शत्रुता के स्थान पर सह अस्तित्व का निर्माण करके परमानन्द प्राप्त किया जा सकता है। एकात्मक मानवदर्शन शाश्वत जीवन मूल्यों पर आधारित मानव प्रवृत्तियों का सूक्ष्मसार एवं सम्पूर्ण मानव वंश को सुख समृद्धि की राय पर ले जाने वाला शाश्वत दर्शन है। इस दर्शन के आधार पर नयी समाज की आवश्यकता है प्रस्तुत शोध इस दिशा में निसंदेह महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगा।

इसके अतिरिक्त इस अध्ययन का महत्व इसलिए भी अधिक है कि महामना जी न केवल प्राचीन भारतीय संस्कृति के सम्पोषक थे अपितु जीवन के विभिन्न पहलुओं जैसे, आर्थिक, शैक्षिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, प्रावधिक एवं शारीरिक

आदि सभी क्षेत्रों में उन्नति एवं विकास के लिए कतिवद्ध थे इसके समानान्तर ही महामना तत्कालीन शोषण, स्वार्थ एवं संघर्ष के युग में भी मानवीय मूल्यों के पोषक थे। उनके मस्तिष्क में मानव धर्म ही सेवापरि था वे चतना के समर्थक थे पराधीनता की श्रृंखलाओं में जकड़े भारत को स्वाधीन बनाकर उसे उन्नतिशील बनाने हेतु महामना ने सर्वाधिक बल शिक्षा पर दिया। शिक्षा को वे सभी सामाजिक शिथलताओं को समाप्त करने के लिए अमोध अस्त्र मानते थे।

दूरदर्शिता महामना जी के व्यक्तित्व का एक अभिन्न अंग थी उनकी योजनाऐं न केवल देश विशेष या काल विशेष की थी अपितु वे तो सार्वमौमिक, सार्वदर्शिक एवं सर्वकालिक सत्य थी। वे देश और काल की सीमाओं से मुक्त थी स्वाधीनता संग्राम मेंबनी शिक्षा योजनाएं स्वतंत्रता के पश्चात इतने लम्बे अन्तराल के बाद भी आज तक उतनी ही समीचीन है। अनैतिक शक्तियों को भी सृजन में लगा देना महमना के शिक्षा दर्शन का सार है। महामना जी बुरे से बुरे व्यक्ति को अपना समर्थक बना लेते थे इसलिए वे अजातशत्रु कहलाते थे इससे कार्यो में विकृति के स्थान पर सुकृति के दर्शन होने लगते थे। उनके इस सदगुण का आदर्श परिणाम उनके द्वारा स्थापित काशी हिन्दू विश्वविद्यालय है। महामना ने अपने इस विश्वविद्यालय को " भारत का आधुनिक गुरूकुल " नाम से अलंकृत किया है।

महामना जी एवं उपाध्याय जी के शैक्षिक विचारों का विशद अध्ययन मात्र शिक्षा जगत के लिए ही लाभकारी नहीं वरन् यह अध्ययन वर्तमान परिवेश की ज्वलन्त समस्याओं तथा साम्प्रदायिकता , भ्रष्टाचार , क्षेत्रीयतावाद ,शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त अव्यवस्थाओं और मानव मूल्यों के ह्रास आदि की दिशा में सुधार का क्षेत्र है।

महामना के सम्बन्ध में समय–समय पर दिये गये महापुरूषों के वकतत्व महामना का

स्वरूप दर्शन कराने में सहायक सिद्ध होंगें , श्री चिन्तामणि ने महामना के विषय में कहा—

महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय महान विधानवादी ही नहीं, अपितु महान शिक्षाशास्त्री और समाज सुधारक भी थे।............... महामना जी हिन्दू और मुसलमान दोनो ही पक्षों के प्रतिष्ठित नेता थे।........... मालवीय जी अपने व्यवहृत कार्यो से अमर है। समझौता उनके स्वभाव का एक अंग था। वे करूणा और कोमलता के विधान थे। " [1]

इसी प्रकार के मतों के आधार पर महामना एवं उपाध्याय जी के शिक्षादर्शन से प्रभावित होकर उनकी शैक्षिक विचारधारा का व्यापक अध्ययन करने की दृष्टि से और साथ ही महामना एवं उपाध्याय जी के विषय में संकलित जानकारी जो एक ही स्थान पर व्यवस्थित रूप से उपलब्ध नहीं है। शिक्षा जगत एवं राष्ट्र के हितार्थ संकलन करने हेतु प्रस्तुत अध्ययन महत्वपूर्ण है। क्योंकि ऐसे महाशिक्षा विदो के शैक्षिक विचारों का सांगोपांग अध्ययन ही हमारी अव्यवस्थित शिक्षा प्रणाली को एक नवीन स्वरूप प्रदान कर सकेगा। अतः इनके आदर्शो को अपनाना, जानना, समझना, विशेष रूप से भारतीय नवयुवकों को उनके आचरण का अनुकरण की प्रेरणा देने हेतु प्रस्तुत अध्ययन विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

अध्ययन के उद्देश्य—

उद्देश्यों के बिना किसी भी कार्य की कल्पना नहीं की जा सकती। किसी भी कार्य के करने से पहले उसके उद्देश्यों की कल्पना हमारे मन मस्तिष्क में अवश्य रहती है। बिना उद्देश्य ही मनुष्य को कार्य करने की प्रेरणा शक्ति प्रदान करते है और निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायक सिद्ध होते है। अतः जॉन डी0वी0 का

---

(1) चिन्तामणि मालवीय—जीवन झलकियां पृष्ठ 574

कथन अक्षरसः सत्य है। " उद्देश्य सहित कार्य करना ही कुशलता या बुद्धिमानी पूर्वक कार्य करना है। "

किसी भी क्रिया को सोद्देश्य तभी कहा जाता सकता है जब कुछ उद्देश्यों को निर्धारित करके उसे सम्पन्न किया जा रहा हो उद्देश्य हमको दूरदर्शिता प्रदान करता हे। उद्देश्य हमे प्रेरित करता है कि हम क्रिया की सामाप्ति के बहुत पूर्व ही उसके निष्कर्ष और अन्त को लिख लें, उद्देश्य निर्धारित पूर्ण परिस्थितियों का सहयोग प्राप्त करने में सहायत होता है, जिनके योग द्वारा हम अपने निर्धारित गन्तव्य तक पहुचते है । उद्देश्य ही वह वास्तविक शक्ति है जो किया को संचालित करती है, शिक्षा देती है। उद्देश्य के सम्मुख होने पर हम सम्पूर्ण बुद्धि उसी में लगा देती है समय भी कम लगता है और कार्य भी श्रेष्ठतर होता है।

उद्देश्यों के निर्धारण से शोधकर्ता को कई लाभ होते है। उद्देश्य किसी कार्य का चरम बिन्दु होता है जहां तक पहुँचने का सतत् प्रयास किया जाता है उस बिन्दु तक पहुँचने के लिए मार्ग और उपायों का निश्चित करना पड़ता है मार्ग स्थिर होने से निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचने में सुगमता एवं सरलता मिलती है साथ ही समय भी कम लगता है जिस प्रकार नाविक का साधन उसकी पतवार है उसी प्रकार शोधकर्ता के लिए निर्धारित उद्देश्य कार्य करते है। उद्देश्य निर्धारित होने से भूलना भटकना नहीं होता और कार्य शीघ्र पूरा होता है दूसरे कार्य करने की शक्ति बनी रहती है कार्य करने वाले को ऐसी अनुभूति होती है जिसकी प्रेरणा से वह आगे बढ़ता है इस कारण उसे उत्साह , स्फूर्ति और बल मिलता रहता है शोधकर्ता को कार्य करने में प्रसन्नता मिलती है जिससे कार्य करने में सदैव रूचि बनी रहती है, रूचि के कारण कार्य में प्रगति होती रहती है। रूचि पूर्वक थोड़े–थोड़े आगे बढ़ने में भी लक्ष्य दिखाई देता रहता है इससे फल प्राप्ति की आशा निरन्तर बंधी रहती है

और परिश्रम लगातार होता रहता है। इसीलिए किसी कार्य को करने सू पूर्ण उसके उद्देश्यों का निर्धारण आवश्यक होता है उद्देश्यों की आवश्यकता को प्रदर्शित करते हुए डी0वी0महोदय लिखते है कि.......... " चूंकि उद्देश्य सदैव परिणामों से सम्बन्धित होते है, पहली चीज जिसे ध्यान में रखना चाहिए, जबकि यह प्रश्न उद्देश्य का हो, कि जो काम दिया गया है उसमें आन्तरिक निरन्तरता है अथवा वह केवल क्रमागत कार्यो का समूह मात्र है पहले एक चीज की गयी फिर दूसरी।...... दूसरे स्थान में पूर्व दर्शित लक्ष्य के रूप में उद्देश्य क्रिया को निर्देशन देता है यह दर्शक मात्र निष्क्रिय विचार नहीं होता है, परन्तु लक्ष्य तक पहुँचने में उठाये गये कदमों को प्रभावित करता है। "

इस प्रकार उद्‌देश्य निर्धारण का परिणाम यह होता है कि –सौद्देश्य कार्य करने में ब1द्धि का प्रयोग होता है सचेतन क्रियाशील होती और कार्यो में सार्थकता होती है1 उद्‌देश्यों के इसी महत्व को ध्यान में रखते हुए शोधकर्ता ने प्रस्तुत शोध कार्य के लिए निम्न उद्देश्यों का निर्धारण किया है।

पं0दीनदयाल उपाध्याय एवं महामना मदन मोहन मालवीय दोनो ही महापुरूष भारत में इस प्रकार की परिस्थितियों में जन्में, कि भारत परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था, चारो ओर अत्याचार एवं राजनैतिक षड़यन्त्रों का बोलवाला दिख रहा था। भारतीय संस्कृति में निरन्तर गिरावट आ रही थी, इस प्रकार पर्यावरण तथा परिस्थितियों में भारतीयों का मार्ग दर्शन करना एवं उनमें व्याप्त रूपी अन्धकार को दूर करने के लिए कुछ मनीषियों की अति–आवश्यकता थी। ऐसी विषम परिस्थितियों में पण्डित दीनदयाल उपाध्याय एवं महामना मदन मोहन मालवीय जैसे महापुरूषों ने जन्म लेकर किस प्रकार भारतवासियों का शैक्षिक मार्गदर्शन कर

कल्याण किया? यह देखना इस सम्बन्ध में चिन्तन करना ही प्रस्तुत शोधप्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य है।

शोधकर्ता यह अनुभव करता है कि दोनो ही शिक्षाविदों का जीवन—वृत्त बहुआयामी है। इन्होनें मानव जीवन के लगभग सभी पक्षों पर (विशेष रूप से शिक्षा) अपनी छाप छोड़ी है। इन्होने भारतीय जनसमुदाय को शिक्षा की ओर प्रेरित करने के लिए किस प्रकार परिश्रम किया है, इस तथ्य का पता लगाना भी प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य है।

दोनो ही महापुरूषों यद्यपि ब्राह्मण एवं कट्टर हिन्दू थे। कि हिन्दू शब्द उनके लिए धर्म का धोतक न होकर जाति एवं राष्ट्र का धोतक था भारत में विभिन्न धर्मो के रहने वाले जैसे—सनातन धर्म, आर्यसमाजी, जैन, बौद्ध, सिख, ईसाई तथा मुसलमानों को भी वे हिन्दू ही मानते थे भारतीय परिवेश में इन्होंने अपने आचरण द्वारा इस तथ्य का प्रकटीकरण कर किस प्रकार से शिक्षा के संगठन में अपना योगदान दिया है तथा ये भारतीय समाज को हिन्दुत्व की ओर कितना अग्रसर कर सके? इसका ज्ञान प्रस्तुत शोध का एक उद्देश्य है।

भारत ही नहीं आज सम्पूर्ण विश्व अपने चिन्तन एवं व्यवहार में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपना रहा है प्रयोग के निष्कर्षो पर अस्थाएं दृढ़ हो रही है। इसका ज्वलंत उदाहरण भारत द्वारा किये गये परमाणु विस्फोटों से प्राप्त आत्म गौरव एवं अर्न्तराष्ट्रीय धरातल पर भारत को एक परमाणु शक्ति स्वीकारा जाना है। प्रस्तुत अध्ययन में यह देखना हमारा उद्देश्य है कि इन दोनो ही महापुरूषों में भारत में राष्ट्रीयता का बीजारोपण किस प्रकार किया।

आज विश्व में प्रयोजनवादी विचार धारा का प्रचलन अधिक सबल दिखाई पड़ता है। वर्तमान पर सभी बल दे रहे है। किन्तु भूत और भविष्य की ओर से अपना ध्यान हटाने की कोशिश कर रहे है ऐसी परिस्थितियों में पंडित दीनदयाल उपाध्याय तथा मालवीय जी किस प्रकार अपनी शैक्षिक एवं दार्शिनिक विचारधारा द्वारा प्रयोजन वादी दृष्टिकोण प्रतिष्ठित करने में समर्थ हुए है। मैं यह अनुभव करता हूँ, कि इन दोनो विद्वानों को भारत वर्ष की शैक्षिक दूरदर्शो से अत्यन्त मानसिक वेदना, होती रही होगी, ये लोग निरक्षरता को भारतवासियों के पतन का कारण मानते रहे होगें। अतः प्रस्तुत अध्ययन का यह उद्देश्य है कि बच्चों के सम्पूर्ण विकास के लिए शिक्षा का स्वरूप क्या हो एवं इस सम्बन्ध में इन दोनो विद्वानों का क्या योगदान रहा है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी एवं महामना मदन मोहन मालवीय जी दोनो ने ही राजनैतिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में इतनी ख्याति प्राप्ति की थी कि इन दोनो ही क्षेत्रों में हुए योगदान को देखकर सामान्य लोग उनके शैक्षिक योगदान को ठीक से परख नहीं पाते है इन दोनो ही शिक्षाविदों की शैक्षिक विचारधारायें किसी अन्य शिक्षाशास्त्री की विचाराधारा से कम नहीं है। इस तथ्य को प्रकट करना वर्तमान शोध का उद्देश्य है।

प्रायः प्रत्येक दर्शनिक विचारधारा उसके सामान्य जीवन–दर्शन से ही प्रभावित होती है। मेरी धारणा है कि इन दोनो ही विद्वानों की शैक्षिक एवं दार्शनिक विचारधाराओं का आलोचनात्मक अध्ययन करना ही है। में यह भी देखना है कि वर्तमान भारतीय लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था में इन दोनो ही विचारधाओं का क्या योगदान है।

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य यह भी है कि दोनो मनीषियों के विचारों का हमारे लोकतंत्रात्मक समाज की पुनः रचना एवं सामाजिक व्यवस्था के पुर्नगठन में क्या भूमिका है। प्रत्येक राष्ट्र एवं समाज को अपने के मार्ग में अनेकों कठनाईयों का सामना करना पड़ता है। शोधकर्ता को अपने देश में शैक्षिक , सामाजिक, राजनैतिक एवं राष्ट्रीयता के प्रगति के माग्र पर बढ़ने में कौन–कौनसी कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। इन सभी तथ्यों का अध्ययन करना प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य है।

अध्ययन में प्रयुक्त शोध विधि –

शोधकर्ता को अपने शोधकर्ता को पूर्ण करने के लिए किसी न किसी विधि को अपनाना पड़ता है। शोध समस्या की प्रकृति के अनुसार ही शोध विधि का प्रयोग किया जाना चाहिए। अध्ययन विधि का निर्धारण इस बात पर निर्भर होता है कि कार्य के लिए जो समस्या ली गयी है वह किस प्रकार की है। यहां पर शोधकर्ता का ध्यान उचित अध्ययन विधि के चयन पर केन्द्रित है। अध्ययन कार्य को पूरा करने के लिए अनेक विधियों में से कुछ प्रमुख विधियां निम्न है।

1. एतिहासिक शोध विधि
2. प्रयोगात्मक विधि
3. विवरणात्मक या सर्वेक्षण शोध विधि

यहां पर संक्षेप में शोधकर्ता तीनों विधियों का वर्णन करने का प्रयास करेगा तथा उन्हीं के आधार पर अपने प्रस्तुत शोध कार्य हेतु उचित विधि का निर्धारण करेगा।

(क) ऐतिहासिक शोधविधि

इस विधि में ऐतिहासिक महत्व के तथ्यों को ढूढकर उनका वर्गीकरण तथा विश्लेषण करके उनकी व्याख्या और आलोचना के आधार पर कुछ मान्य निष्कर्ष निकाले जाते है। यह विधि अतीत के इतिहास का किसी विशेष दृष्टिकोण से अध्ययन करती है और संग्रहीत सामग्री की व्याख्या और विवेचना करके सम्बद्ध तर्क संगत निष्कर्षो तक पहुँचती है। इस विधि के द्वारा ज्ञान के क्षेत्र में अतीत की घटनाओं का एकीकृत वर्णन है । शिक्षा के क्षेत्र में ऐतिहासिक साधनों के आधार पर उसकी प्रमुख घटनाओं और उन्नतक्रम का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार के अध्ययन से वर्तमान की समस्याओं का समाधान करने के लिए अतीत के अनुभवों से लाभ उठाया जा सकता है।" (1)

ऐतिहासिक विधि में शोधकर्ता के सामने यह कठनाई होती है कि उसके पास प्रथम दृष्टि सूचनाएं नहीं होती अर्थात घटनाएं भूतकाल में घट चुकी हुई होती है उनका साक्षात्कार नहीं किया जा सकता, मूल लेखों के अन्दर झॉक कर नहीं देखा जा सकता। अतः उसको उपलब्ध सामग्री पर ही विश्वास करना पड़ता है। अतीत की घटनाओं के सम्बन्ध में वह कुछ कर भी नहीं सकता, भले ही उपलब्ध आंकड़े कम विश्वसनीय ही क्यों न हो उन्हीं पर आश्रित होकर उन्हें अपना शोध कार्य पूरा करना पड़ता है।

(ख) प्रयोगात्मक शोध विधि

प्रयोगात्मक विधि शैक्षिक अनुसंधान की एक महत्वपूर्ण विधि के इसके अन्तर्गत दो समूहों को लिया जाता है।

---

(1) शिक्षाशोध– गणेश मूर्ति मिश्रा पृष्ठ 6–7

1. नियन्त्रित समूह

2. प्रयोगात्मक समूह

उपरोक्त समूहों में से नियंत्रित समूह को नियन्त्रित परिस्थितियों में रखा जाता है जबकि प्रयोगात्मक समूहों को आरोपित परिस्थितियों में रखा जाता है। इसके पश्चात दोनो समूहों का तुलनात्मक अध्ययन करके परिणाम प्रस्तुत किये जाते है। अध्ययन के लिए ,लिये गये दोनो समूह हर दृष्टि से समान होने चाहिए। यद्यपि पूर्णतया समान समूह निर्मित करना काफी कठिन होता है,क्योकि ये समूह स्वास्थ्यलिंग आयु, बुद्धि, प्रजाति , व्यक्तित्व तथा पर्यावरण की दृष्टि से एक जैसे होने चाहिए।

शिक्षा के क्षेत्र में यह विधि किसी विधि की उपयोगिता को ज्ञात करने तथा किसी तकनीक जो कक्षा में दैनिक शिक्षण के लिए लागू की जाती है, की उपयोगिता को ज्ञात करने के लिए काफी महत्वपूर्ण है और दो शिक्षणविधियों एवं दो व्यक्तियों के शैक्षिक विचारों का काफी सुगमता से तुलनात्मक अध्ययन इस विधि द्वारा किया जा सकता है।

(ग) सर्वेक्षण शोध विधि

सर्वेक्षण विधि वर्तमान में सम्बन्ध रखती है जबकि ऐतिहासिक भूतकाल से सम्बन्धित होती है। परिवर्तन प्राकृतिक नियम है मानव विचारों तथा मान्यताओं में भी परिवर्तन होते रहते है। कुछ सामाजिक परिवर्तन समाज की नवीन पीढ़ी के अवतरण के साथ ही इतनी मन्द गति से होते है कि उनका आभास सहज में नहीं हो पाता है और धीरे–धीरे यही परिवर्तन शिक्षा जगत में भी परिलक्षित होने लगता है, परिवर्तन का दिशा में शिक्षा की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है समय–समय पर इस परिवर्तन

को नियन्त्रित एवं व्यवस्थित करने की आवश्यकता होती है इसके लिए शैक्षिक विचारधाराओं का व्यापक अध्ययन किया जाना काफी महत्वपूर्ण हो जाता है। इस अध्ययन की विधि कौनसी हो वह शोधकर्ता के ऊपर निर्भर करता है।

शोध की सार्थकता प्रमाणित करने के लिए शोधकर्ता महामना मदनमोहन मालवीय जी एवं पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के शैक्षिक विचारों को प्रभावित करने वाले भारतीय शिक्षा जगत से सम्बन्धित ग्रन्थों की सामग्रियों की विवेचना करते हुए शिक्षा जगत को प्रभावित करने वाले उनके विचारों का विश्लेषण तथा परम्परागत भारतीय शिक्षा व्यवस्था का समाचीन अध्ययन, परिवर्तन के प्रसंग में करेगा।

भारतीय शास्त्रों का आधार मानने वाली भारतीय शिखा प्रणाली के महामना एवं उपाध्याय जी ''प्राण स्वस्थ'' मर्मज्ञ एवं प्रतीक थे। सर्वेक्षण का मूल अर्थ– ऊपर से देखना या अवलोकन अथवा अन्वेषण होता है जिसका उद्‌देश्य एक क्षेत्र की किसी एक स्थिति अथवा उसके प्रचलन के सम्बन्ध में यथथि सूचना प्रदान करना होता है। इस आधार पर भारतीय शिक्षा जगत में महामना एवं उपाध्याय जी के शैक्षिक विचारों का ऐतिहासिक आधार पर विश्लेषणात्मक अध्ययन करना अधिक उपयुक्त होगा। स्थान–स्थान पर विभिन्न कथनों एवं प्रत्यालोचनाओं पर आधारित विश्लेषण एवं तुलनात्मक प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में मुख्य अध्ययन विधि है इस अध्ययन कार्य की पुष्टि करना ही शोधकर्ता का अभीष्ट कार्य है।

शोधकर्ता इस अध्ययन में प्रमुखतः ऐतिहासिक विधि का प्रयोग करेगा, इस विधि का तात्पर्य अतीत के अनुभवों का अध्ययन करना तथा इसके माध्यम से मानव विचार व व्यवहार के उन विकास क्रमों की खोज करना है जिससे किसी सामाजिक गतिविधि के आधार का ज्ञात होता है, ऐतिहासिक विधि के प्रयोग करने का मुख्य

उद्देश्य शिक्षा सम्बन्धी, दार्शनिक विचारधाराओं , पद्धतियों, आवश्यकताओं एवं आदर्शो की जानकारी उपलब्ध कराना होता है एवं उने सम्बन्ध में वर्तमान समय के शिक्षा जगत की समस्याओं व व्यवस्थाओं का हल निकालना होता है। जैसा कि प्रस्तुत शोध अध्ययन का उद्देश्य उपाध्याय जी एंव मालवीय जी के विचारो का वर्तमान की आवश्यकताओं के सन्दर्भो में मूल्यांकन करना है। ऐतिहासिक विधि के अतिरिक्त तुलनात्मक , प्रयोगात्मक, सर्वेक्षण, तत्व, ज्ञान, मूल्य आदि का भी यथोचित प्रयोग किया जायेगा।

तथ्य संकलन श्रोत एवं उपकरण –

शोधकर्ता ऐतिहासिक विधि के अन्तर्गत प्राथमिक एंव गौड़ श्रोतों के ऐतिहासिक महत्व के तथ्यों को ढूढकर उनका वर्गीकरण तथा विश्लेषण करके उनकी व्यवस्था और आलोचना के आधार पर निष्कर्ष निकालने का प्रयाय करेगा।

प्राथमिक श्रोत विषय वस्तु के मूल भण्डार होते है किसी महत्वपूर्ण अवसर का मल आधार अभिलेख होता है। इसलिए पंडित दीनदयाल उपाध्याय तथा महामना मदन मोहन मालवीय की मौलिक कृतियों को आधार के रूप में ग्रहण किया जायेगा तथा इनके द्वारा लिखित पुस्तकों, लेखों अभिभाषणों तथा अनेक पत्रिकाओं के अध्ययन को मुख्य आधार माना जायेगा।

गौड़ श्रोतों में हम उन साधनों को सम्मिलित करते है'– जिनका लेखक दार्शनिक व शिक्षा शास्त्रीय स्वंय निर्माता नहीं होता है वरन उनके विचारों व दर्शनिक चिन्तन के प्रति अन्य विद्वानों के द्वारा विचार व्यक्त किये जाते है अतः महान आलोचकों व समालोचकों द्वारा इन दोनो शिक्षा शस्त्रियों के सम्बन्ध में लिखे गये ग्रन्थो को भी शामिल किया जायेगा जिनके अध्ययन के पश्चात ही शोधकर्ता प्रस्तुत

अध्ययन की विषय वस्तु में अन्तः दृष्टि प्राप्त कर अपने को सक्षम बनाकर प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को पूर्णतः प्रदान कर सकेगा।

प्रस्तुत शोध में सर्वेक्षण विधि के विभिन्न आयामों विद्यालय सर्वेक्षण, कार्य विश्लेषण, प्रलेखी विश्लेषण, जनमत विश्लेषण, समुदाय सर्वेक्षण के द्वारा वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के सुधार के लिए, वर्तमान दशा से सम्बन्धित आकड़े एकल किये जायेगें। सर्वेक्षण के उपकरण निरीक्षण, प्रश्नावली, साक्षात्कार मानक परीक्षण, मूल्यांकन मापदण्ड आदि के माध्यम से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर सीमाओं का ध्यान रखते हुए शैक्षिक पाठ्यक्रम सम्बन्धी सुझाव शोधकर्ता प्रस्तुत करेगा। भारतीय शिक्षा व्यवस्था उससे सम्बन्धित साहित्य शास्त्र, उपनिषद , वेद, रामायण, रामचरित्र मानस, गीता, महाभारत आदि धर्मग्रन्थ तथा उनका पंडित दीनदयाल एवं मालवीय जी पर प्रभाव का अध्ययन करके तथ्य एकत्र किये जायेगें।

अन्य विद्धानों जैसे नाना जी देशमुख ,कु0सी सुदर्शन, डा0महेश चन्द्र शर्मा, डा0मुरली मनोहर जोशी, आदि द्वारा दीनदयाल एवं मालवीय जी के सम्बन्ध में लिखी सामग्री से एवं मौखिक स्मरणों आदि से तथ्य संकलित किये जायेंगें। पंडित दीनदयाल जी एवं मालवीय जी के राजनैतिक सामाजिक कार्यो का अध्ययन करके तथ्य संकलन का कार्य शोधकर्ता द्वारा किया जायेगा।

अध्ययन का न्यादर्शन–

प्रस्तुत अध्ययन में न्यादर्श के रूप दीनदयाल व मालवीय जी के ग्रन्थ तााि उन पर अन्य विद्धानों द्वारा लिखित ग्रन्थो के साहित्य तथा शोध कार्य से सम्बन्धित साहित्य ही न्यादर्श का प्रमुख आधार होगा।

प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ता ने पं0दीनदयाल उपाध्याय एवं महामना मदन मोहन मालवीय जी के शैक्षिक विचारों का आलेचनात्मक अध्ययन करने के साथ ही दोनो के विचारों का आलोचनात्मक अध्ययन करने के साथ ही दोनो के विचारों की समानता व असमानता के समालोचनात्मक दृष्टिकोण को सम्मिलित किया है इनके जीवनदर्शन व शिक्षादर्शन के क्रमिक विकास में तत्कालीन परिस्थितियों का क्या योगदान रहा है और इन दोनो मनीषियों का व्यक्तित्व बहुआयामी था इन्होंने जीवन के सभी पहलुओं को अपनी विचारधारा द्वारा प्रभावित किया था इसलिए शोधकर्ता ने केवल इन दोनो शिक्षा शास्त्रियों के शेक्षिक विचारो का वर्तमान के सन्दर्भ में मूल्यांकन करना ही अपना लक्ष्य निर्धारित किया है।

समस्या का सीमांकन–

प्रस्तुत समस्या के समुचित समाधान के लिए उसके स्वरूप को सीमाबद्ध करलें अन्यथा वह बीहड़ में फंसे हुए पक्षिक के समान किसी मार्गदर्शक की प्रतीक्षा में ललचायी आंखों से निहारता रह जायेगा इसलिए शोध कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व ही शोधकर्ता को चयनित समस्या को सीमांकित करके सफलता हेतु अपने कदम बढ़ाये है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी एवं पंडित मदन मोहन मालवीय बहुआयायी व्यक्तित्व के धनी पुरूष थे, उनका वैचाारिक दर्शन, धार्मिक, राजनैतिक सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षिक सभी क्षेत्रों के लिए मार्गदर्शक का कार्य कर रहा है। उनके समस्त क्षेत्रों से सम्बन्धित विचारों का अध्ययन करने के लिए अत्यन्त समय एवं धन की आवश्यकता पड़ेगी। अतः प्रस्तुत शोध में मात्र उनके शैक्षिक विचारों को ही संकलित करने का प्रयास किया गया है और उनके द्वारा लिखे गये लेख, दैनिक एवं

सप्ताहिक पत्र पत्रिकाएं ,पुस्तके और भाषण को एकत्र करके अनन्य सहयोगी मित्र श्री दत्तोपन्त ढेंगडी नाना जी देशमुख और रामशंकर अग्निहोत्री, डा0मुरली मनोहर जोशी, सुन्दरसिंह भण्डारी, श्री वीरेश्वर द्विवेदी सम्पादक राष्ट्र र्म एवं पं0दीनदयाल उपाध्याय शोध सस्थापन लखनऊ तथा दिल्ली एवं अन्य स्थानों की सहायता से उनके शैक्षिक विचारों की उपादेयता सिद्ध करने का प्रयास और उनके विचारों का तुलनात्मक अध्ययन भारतीय लोकतन्त्रात्मक परिवेश के सन्दर्भ में शोधकर्ता द्वारा किया जायेगा।

सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण

शोध कार्य को समुचित ढंग से सम्बन्धित करने के लिए उचित सम्बन्धित साहित्य की आवश्यकता होती है प्रत्येक किया जाने वाला कार्य निश्चित नियमों में बंधा होता है। जिसमें निहित समस्या का समाधान प्राप्त होता है।

सम्बन्धित साहित्य से तात्पर्य है– " शोध विषय से सम्बन्धित ऐसा साहित्य जिसमें विषय के किसी पक्ष अथवा सम्पूर्ण विषय पर विचार व्यक्त किये गये हो।" शोधकर्ता को अपने शोध से सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण एवं अध्ययन करके उपयोग विषय सामग्री को एकत्र करते हुए समस्या का समाधान निकालना पड़ता है।

सामाजिक तथा शैक्षिक क्षेत्र में अनुसंधान करने के लिए सर्वेक्षण समस्या से सम्बन्धित आकड़ो के संकलन का एक महत्वपूर्ण साधन व उपकरण है। समस्याओं का समाधान करने के लिए शिक्षाशास्त्री, मनोवैज्ञानिक, सरकार उधोगपति तथा राजनीतिज्ञ सभी सर्वेक्षण करते है। वे वर्तमान किया की सार्थकता सिद्ध करने अथवा वर्तमान क्रिया में सुधार करने के लिए वर्तमान दशा से सम्बन्धित आंकड़े एकत्र करते है। सर्वेक्षण सम्बन्धी अध्ययन का क्षेत्र तथा उसकी गहराई समस्या की प्रकृति

पर निर्भर होगी, उसके अनुरूप सर्वेक्षण विस्तृत अथवा संक्षिप्त हो सकता है। इसके अन्तर्गत अनेक देशों अथवा एक देश, धर्म शहर अथवा किसी इकाई को ही ले सकते है। किसी विशेष पक्ष के विषय में आकड़े प्राप्त करेंगें या उनके पक्षों के विषय में, यह समस्या की प्रकृति पर निर्भर है।

" सर्वेक्षण का मूल अर्थ ही ऊपर से देखना या अवलोकन अथवा अन्वेषण होता है। " शब्दकोष के अनुसार भी सर्वेक्षण का अर्थ एक प्रायः सरकारी आलोचनात्मक निरीक्षण होता है। जिसका उद्देश्य एक क्षेत्र की किसी एक स्थिति अथवा उसके प्रचलन के सम्बन्ध में यथार्थ सूचना प्रदान करना होता है। (1)

भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा के सम्बन्ध में विभिन्न विद्धानों एवं शिक्षाविदो ने समय–समय पर अपने दार्शनिक चिन्तन के अनुरूप विचारों का प्रतिपादन किया है। उनमें से स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द महर्षि अरविन्द, महात्मा गांधी, पंडित जवाहर लाल नेहरू , लालालाजपत राय, पंडित मदन मोहन मालवीय, बाल गंगाधर तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले, रविन्द्रनाथ टैगोर, गुरूजी गोलवरकर, प्रो0बलराज मधोक, पं0दीनदयाल उपाध्याय, आचार्य रजनीश, डा0महेश चन्द्र शर्मा, डा0रामशुक्ल पाण्डे, सूरज प्रसाद चौबे, आदि का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। इन्हीं के आधार पर प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ता अपने निष्कर्ष निकालने का प्रयास करेगा।

---

(1) अनुसंधान विधियां, सर्वेक्षण अनुसंधान– एच0के0कपिल पृष्ठ–186

अध्याय द्वितीय

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जी का जीवनवृत्त तथा कृतित्व–

कभी–कभी धरती के जनमानस को नई दिशा देने और युग के ईश्वरीय कार्य को सम्पन्न करने के लिए युग पुरूषों का जन्म होता है। वे प्रतिकूल परिस्थितियों में जन्म लेने के बाद भी अपनी जन्मजाति चमत्कारिक प्रतिमा द्वारा बड़े से बड़े कार्य सम्पन्न करके अन्तरध्यान हो जाते है। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारतीय क्षितिज में कुछ ऐसे ही जाज्वल्यमान नक्षत्रों का उदय हुआ। जिन्होंने अपने प्रकाश से भारत बसुन्धरा को आलोकित कर दिया।

(क) जन्म एवं शिक्षा–

स्वामी विवेकानन्द और महर्षि अरविन्द की गौरवशाली भारतीय परम्परा को आगे बढ़ाने वाले प्रवर राष्ट्रभक्ति की अलख जगाने वाले बहुमुखी प्रतिमा के धनी एकात्मक मानव वाद के प्रणेता '' महामानव'' पण्डित दीनदयाल जी उपाध्याय का जन्म 25 सितम्बर 1916 : विक्रम सम्वत 1973: भाद्रपद अश्विन कृष्ण 13 सोमवार को राजस्थान प्रान्त जयपुर–अजमेर रेलवे लाइन पर स्थिति '' धनकिया'' नामक रेलवे स्टेशन पर हुआ था पंडित दीनदयाल जी के नाना पं0चुन्नीलाल जी शुक्ल ''धनकिया' में स्टेशन मास्टर थे। अतः इनके जन्म के समय इनकी माता जी अपने पिता के पास '' धनकिया'' में ही रह रही थी। (1)

---

(1) एकात्मता के पुजारी पं0दीनदयाल उपाध्याय– भाउराव देवरस्, शिवकुमार अस्थाना लोकहित पकाशन लखनऊ पृष्ठ–13

पण्डित दीनदयाल जी के पूर्वज मथुरा जिले के आगरा मथुरा मार्ग पर स्थित "फरह' कस्वे से एक किलोमीटर पश्चिम में नगला चन्द्रभान नामक गॉव में रहते थे जहां दुर्भाग्य से पण्डित जी कभी नहीं रह सके। पं0दीनदयाल जी के प्रपितामह पं0हरीराम जी शास्त्री अपने क्षेत्र के प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। शास्त्री जी अपने भाई श्री झण्डूलाल जी भतीजे शंकर और वंशीलाल पुत्र भूदेव राम प्रसाद तथा प्यारेलाल के साथ इस छोटे से गांव में रह रहे थे पं0हरीराम जी शास्त्री की मृत्यु के उपरान्त इस परिवार में मौतो का ऐसा सिलसिला प्रारम्भ हुआ कि पूरे परिवार के पुरूष सदस्य काल कवलित हो गये। सारे परिवार में मात्र विधवाएं ही शेष रह गयी। जिनका जीवनधारा शेष था, राम प्रसाद जी का एक मात्र पुत्र भगवती प्रसाद। पढ–लिखकर बढ़े हुएऔर आर्थिक चिन्ता के कारण उन्हें रेलवे में नौकरी करनी पड़ी। पण्डित जी छः वर्ष के हुए कि क्षयरोग से ग्रस्त शोकाकुल माता श्रीमती रामप्यारी भी स्वर्ग सिधार गयी। दीना ास्तव में दीना(अनाथ) मात्र रह गया।

पण्डित दीन दयाल जी के नाना पं0चुन्नीलाल जी शुक्ला नौकरी छोड़कर "दीना" के साथ अपने गॉव " गुड़ की भड़ई" आगरा चले आये। "गुड़ की भड़ई" आगरा जिले में फतेहपुर सीकरी के पास स्थिति छोटासा गांव था। यही गांव पंडित दीनदयाल जी का वास्तविक ननिहाल था। पंण्डित जी की उम्र अभी 9 वर्ष थी कि उनके पालक नाना श्री चुन्नीलाल जी शुक्ल सितम्बर 1925 में स्वर्ग सिधार गये। पिता–माता व नाना के वात्सल्य से वंचित होकर वे अपने मामा श्री राधारमण शुक्ल के आश्रय में पलने लगे। श्री राधारमण शुक्ल गंगापुर में सहायक स्टेशन मास्टर थे।

(ख) प्रारम्भिक शिक्षा–

पं0दीनदयाल जी सन् 1925 में अपने मामा श्री राधारमण जी शुक्ल के साथ गंगापुर सिटी चले गये, यही उनकी विधिवत, शिक्षा का शुभारम्भ हुआ। कक्षा–4 तक की पढ़ाई उन्होंने यही की। गंगापुर में आगे पढ़ाई की व्यवस्था न होने के कारण मामा जी ने "दीना" को आगे की पढ़ाई के लिए कोटा(राजस्थान) भेज दिया। वहां "सेल्फ स्पोटिंग हाउस" में रहने की व्यवस्था कर दी। यही दीना ने स्वालम्बन का पाठ सीखा तीन वर्ष की कड़ी मेहनत के बाद मिडिल (कक्षा'–7) की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर ली।

पण्डित दीनदयाल जी अपने अध्ययनकाल में इतने प्रतिभा सम्पन्न थे कि जब वे कक्षा नौ में पढ़ते थे तो कक्षा दस के छात्र भी उनसे गणित के सवाल हल करवाया करते थे। " सन 1934 में श्री नारायण शुक्ल(मामा) का स्थानान्तरण "सीकर हो जाने के कारण दीनदयाल जी उनके साथ सीकर आ गये और महाराजा कल्याण सिंह हाईस्कूल में प्रवेश ले लिया। 19 वर्ष की आयु मेंसन् 1935 में पण्डित जी अजमेर बोर्ड में प्रथम श्रेणी से प्रथम उत्तीर्ण हुए। दीनदयाल जी की प्रतिभा में प्रभावित होकर सीकर महाराज कल्याण सिंह ने इन्हें "स्वर्णपदक" से सम्मानित किया और अग्रिम शिक्षा के लिए 10 रूपये मासिक छात्रवृत्ति तथा 250/– रूपये की एक मुश्त आर्थिक सहायता प्रदान की। दूसरा स्वर्णपदक अजमेर बोर्ड द्वारा उन्हें प्रदान किया गया। [1]

---

(1) पत्रिका पं0दीनदयाल उपाध्याय लोकतंत्र के पुरोधा डा0महेश चन्द्र शर्मा
सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग लखनऊ सितम्बर 1991 पृष्ठ–3

इण्टरमीडिएट की पढ़ाई के लिए " सन् 1935 में पिलानी(राजस्थान) गये। उन दिनों पिलानी उच्च शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र था। अतः विडला इण्टर कालेज में प्रवेश ले लिया। सन् 1937 में इण्टरमीडिएट बोर्ड की परीक्षा में बैठे और न केवल समस्त बोर्ड में सर्वप्रथम रहे, वरन् सभी विषयों मे विशेष योग्यता के अंक प्राप्त किये। विडला कालेज का यह प्रथम छात्र था जिसने इतने सम्मानजनक अंको से परीक्षा पास की थी । सीकर महाराज के समान ही धनश्याम दास विडला ने एक स्वर्णपदक 10/– रूपये मासिक छात्रवृत्ति तथा पुस्तकों के लिए 250/–रूपये प्रदान किये।[1]

बी0ए0 की शिक्षा प्राप्त करने के लिए 1937 में दीनदयाल जी पिलानी से कानपुर आये और एस0डी(सनातन धर्म) कालेज में प्रवेश ले लिया। 1937 में ही वेदमूर्ति पंण्डित सातवलेकर जी कानपुर शाखा मे आए, और पं0दीनदयाल उपाध्याय के बारे में भविष्यवाणी की कि किसी दिन बड़ा होकर यह कुशाग बुद्धि बालक देश का गौरव बनेगा। सन् 1939 में पण्डित जी ने प्रथम श्रेणी में बी0ए0 की परीक्षा उत्तीर्ण की।

एम0ए0 अग्रेंजी साहित्य की शिक्षा के लिए 1939 में ही आगरा के सेन्ट जोंन्स कालेज में प्रवेश लिया। सन् 1940 में एम0ए0 प्रथम वर्ष की परीक्षा में प्रथम श्रेणी के अंक प्राप्त किय यहां वह किराये के मकान में रहते थे इसी समय 1940 में उनकी एक ममेरी बहिन रामादेवी बहुत बीमार हो गयी। वह चिकित्सा कराने आगरा आयी। इस समय वह तीन काम एक साथ करते थे पढ़ाई, संघ कार्य और वहन की दवा सेवा। एम0ए0द्वितीय वर्ष की परीक्षा निकट थी उनके सामने प्रश्न था परीक्षा दे या वहिन की तीमारदारी करें? फलतः पुस्तके एक किनारे रखकर अधिकतम समय वहिन की तीमारदारी दवा इलाज कराने में लगाने लगे। रातदिन एक कर दिया। प्राकृतिक

चिकित्सा के लिए पहाड़ पर ले गये पर रामदेवी न बची। इस कारण से पं0जी0 एम0ए0 उत्तरार्द्ध की परीक्षा में न बैठे। अतः परीक्षा न देने से उनकी सीकर और बिडला जी की दोनो छात्रवृत्तियां भी बन्द हो गयी। मामा जी के आग्रह पर वह एक प्रशासनिक परीक्षा में भी बैठे, उत्तीर्ण हुए परनतु इस नौकरी को ठुकराकर बी0टी0 करने के लिए प्रयाग(इलाहाबाद) चले गये, सन् 1942 में बी0टी0 की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की।

(ग) पारिवारिक जीवन–

दीनदयाल जी का पारिवारिक जीवन अत्यन्त दुःखमय रहा। बचपन में ही प्रियजनों की मृत्यु का धनीभूत अनुभव हुआ। वे कभी भी अपने पैत्रिक निवास में नहीं रहे। पारिवारिक कारणों से उनका शिशुकाल उनके नाना चुन्नीलाल के साथ ''धनकिया' में बीता। उसी समय उनकी ढ़ाई वर्ष की आयु में ही उनके पिता जी का देहान्त हो गया। दीनदयाल जी पितृहीन व इनकी मॉ रामप्यारी विधवा हो गयी। विधवा शोकाकुल व चिन्तायुक्त रामप्यारी कुपोषण का शिकार होकर क्षयरोग से ग्रस्त हो गयी और दीनदयाल जी को सात वर्ष का छोड़कर रामप्यारी राम को प्यारी हो गयी। दीनदयाल माता–पिता दोनो की स्नेहछाया से वंचित विल्कुल दीना (अनाथ) हो गये।

अभी भी दीनदयाल के ऊपर एक झुरियों भरा स्नेहिल आर्शीवाद का हाथ था। बृद्धा नानी दीनदयाल को बहुत प्यार करती थी लेकिन जब वह उन्नीस वर्ष के हुए दशवी में पढ़ रहे थे जाड़े के दिनों में नानी बीमार हुई और चल बसी।

दीनदयाल जी अक्षरक्षः अनिकेत थे। 25वर्ष की अवस्था तक दीनदयाल जी उपाध्याय राजस्थान व उत्तर प्रदेश में कम से कम ग्यारह स्थानों में कुछ कुछ समय

रहे। इसके साथ ही उनका प्रवेश सार्वजनिक जीवन में हो गया। वे अखण्ड प्रवासी हो गये। मृत्यु ने उनके शिशु, किशोर, बाल व युवा मन पर निरन्तर आघात किये। अतः उनके मन में नहीं आई। नये नये स्थानों पर प्रयास करना, नये–नये अपरिचित लोगों से मिलना उनमें पारिवारिकता उत्पन्न करना, उन्होंने बचपन की अनिकेत अवस्था से ही सीख लिया था। सम्पूर्ण राष्ट्र ही उनका घर परिवार था। एकात्मक मानव वाद के प्रणेता पंडित जी का परिवार समस्त जगत के प्राणिमात्र थे। अपनी सम्पूर्ण शिक्षा–दीक्षा के उपरान्त उन्होंने अपना जीवन राष्ट्र के लिए समर्पित कर दिया। सन् 1942 में राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ के लखीमपुर जिले के प्रचारक नियुक्त होकर राष्ट्र कार्य के लिए कटबद्ध हो गये। निरन्तर प्रवास और संगठन कार्य का सतत् मार्ग–दर्शन देश के कोने कोने में लाखों स्वंय सेवकों से मधुर स्नेह पूर्ण आत्मीय सम्बन्धों की स्थापना , यही पंडित दीनदयाल जी का एकमेत कार्य था।

(घ) सार्वजनिक जीवन और सम्पादन कार्य–

पण्डित दीनदयाल जी सन् 1937 में कानपुर बी0ए0 की शिक्षा प्राप्त करने के लिए गये वही इनका सम्पर्क राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ के वरिष्ठ कार्यकर्ताओं से हुआ। बाबा साहब आपटे दारा जीवन में उतार लिया और यही से उनके सार्वजनिक जीवन का श्रीगणेश हो गया। गरीब व पिछड़े विद्यार्थियों को शैक्षणिक उन्नति के लिए जीरोक्लब स्थापित करके उन्हें पढ़ाने और परीक्षा में उत्तीर्ण होने के योग्य बनाते थे अत:विद्यार्थी समाज में इनकी लोकप्रियता बढ़ने लगी।

मृत्युदर्शन ने उनके जीवन में वैराग्य उत्पन्न कर ही दिया था। क्षण भंगरता और प्रियजन विछोह ने उनके हृदय में सन्यास का ऐसा बीजोरोपण किया कि वे नौकरीवृत्ति को ठोकरे मारकर राष्ट्देव के चरणों में समर्पित हो गये और आगे

चलकर वह एक ऐसे द्वीप सिद्ध हुए जो दूसरों को प्रज्जवलित करने के लिए इस धरा में पैदा हुए थे। सार्वजनिक जीवन के प्रारम्भिक काल में उन्होंने देश को स्वाधीनता दिलाने , सर्वसम्पन्न बनाने, शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में खड़ा करने और सम्पूर्ण समाज में समरसता लाने के लिए जीवन पर्यन्त मनसा बाचा कर्मणा , अविराम साधना करने का संकल्प लिया था।

पण्डित दीनदयाल जी का सम्पूर्ण दर्शन जीवन एवं समाज के प्रति समर्पण का भाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते है। पतनशील समाज की सेवा के प्रति जागरूक कर्तव्य भावना उनके ह्दय में गहराई से घर किये हुई थी, जबकि उस समय वह केवल 26 वर्ष के ही थे। आज इस उम्र का नौजवान समय और देश के प्रति बहुत कम सोच पाता था। कभी आगे समाज कार्य में कोई बाधा उत्पन्न न हो परिवार के कारण कही नौकरी में न जाना पड़ जाये, सार्वजनिक जीवन छोड़कर उन्हें ग्रहस्थ जीवन न अपनाना पड़ जाये, इन सब कारणों से उन्होंने सार्वजनिक जीवन के प्रारम्भिक काल में ही अपने सभी शैक्षणिक प्रमाणपत्र जलाकर राख कर दिये थे। ताकि जब बॉस ही न रहेगा, तो बॉसुरी कैसे बजेगी?

पंडित दीनदयाल जी देश की एकता और अखण्डता के प्रति सदैव सजग प्रहरी की तरह समर्पित रहे । अपने जीवन के हर छड़ को समाज सेवा से लगाया, सार्वजनिक क्षेत्र में काम करते करते उन्हें यह अभ्याय हो गया था कि राष्ट्र की निर्धनता और अशिक्षित को दूर किये बिना वास्तविक उन्नति नहीं हो सकती। अतः निर्धन एवं प्रशिक्षित व्यक्तियों की उन्नति के लिए अन्त्योध्य जैसे कल्याणकारी कार्यक्रमों का सुझाव प्रस्तुत किया जो उनके आर्थिक चिन्तन पर आधारित है। और आज भी प्रासंगिक तथा भारतीय परिवेश के अनुकूल है हमारी भावना और सिद्धान्त

है कि वह मैले कुचैले अनपढ़ सीधे साधे लोग हमारे नारायण है हमें इनकी पूजा करनी है यह हमारा सामाजिक एवं भानव कार्य है। जिस दिन इनको पक्के सुन्दर घर बनाकर देगें, जिस दिन हम इनके बच्चों और स्त्रियों को शिक्षा और जीवन दर्शन का ज्ञान देगें जिस दिन हम इनके पैर की बिमाइयों को भरेगें और जिस दिन इनको उधोग धन्धों की शिक्षा देकर इनकी आय ऊँचा उठा देगें। उस दिन हमारा मातृत्व भाव व्यक्त होगा। ग्रामों में जहां समय अचल खड़ा है जहां माता–पिता अपने बच्चों के भविष्य को बनाने में असमर्थ है वहां जब तक हम आशा और पुरषार्थ का संदेश नहीं पहुँचा पायेगें। तब तक हम राष्ट्र को जागृत नहीं कर सकेंगें। हमारी श्रद्धा का केन्द्र आराध्य हमारे पराक्रम और प्रयत्न का उपकरण तथा उपलब्धियों का मानदण्ड वह मानव होगा जो आज शब्दशः अनिकंत और अपरिग्राही है।

पंण्डित दीनदयाल जी उपाध्याय अपने आदर्शो को मूल रूप देने में सदा प्रयत्नशील रहे भा0भानुसाहब देवरस की प्रेरणा से अपने आदशों का प्रचारार्थ सन् 1947 में राष्ट्र धर्म प्रकाशन अर्थात '' राष्ट्र धर्म '' नामक मासिक पुस्तिका प्रकाशित करने की नीव डाली जिससे भविष्य में आने वाली काली आंधी से पूरे देश को सजग किया जा सके।

अत्यन्त विचार मंथन एवं कठिन परिश्रम के बाद शुभ श्रवणी पूर्णिमा(रक्षाबंधन) सम्वत् 2004 वि0 31 अगस्त 1947 को राष्ट्र धर्म का प्रथम अंक प्रकाशित किया। राष्ट्र धर्म –96 पृष्ठ की इस पत्रिका में माननीय अटलबिहारी बाजपेयी की प्रसिद्ध कविता "हिन्दू तनमय हिन्दू जीवन, रंग–रंग हिन्दू मेरा परिचय" परिचय स्तम्भ में छापी गयी।

जब राष्ट्रधर्म का प्रथम अंक प्रकाशित हुआ तो राजनीति तथा साहित्यिक जगत में उसकी धूम मच गयी। सभी प्रतियां ए0पी0सेन, रोड, संघ निवास पर आई और यही से उनका वितरण प्रारम्भ हुआ। माननीय दीनदयाल जी और अटल जी ने स्वंय बण्डल बांधने से लेकर वितरण करने का कार्य किया। माननीय दीनदयाल जी बारह से सोलह घण्टे प्रेस, कार्यालय तथा सम्पादकीय विभाग को देने लगे जिससे की संस्थान की जड़े विधिवत जम सके। परिणामतः प्रकाशन के कई अन्य पुष्प भी खिले यथा पांचजन्य साप्ताहिक, दैनिक स्वदेश तथा दैनिक 'तरूण भारत'।

पण्डित जी द्वारा प्रारम्भ किये गये ''राष्ट्रधर्म'' मासिक ''पात्र्चजन्य'' साप्ताहिक विशिष्टि पत्रों के रूप में गिने जाते है। सन 1947 में पात्र्चजन्य को उत्कृष्ट मुद्रण एंव प्रकाशन की दृष्टि से लखनऊ से दिल्ली स्थानान्तरित कर दिया गया। ''स्वदेश'' वर्तमान में मध्यप्रदेश का प्रमुख दैनिक बनकर राष्ट्र की सेवा में समर्पित है।

पण्डित जी ने एकात्मक मानव बाद नामक अलौकिक रचना करके भारतीय जीवन दर्शन को वर्तमान सन्दर्भ में प्रस्तुत कर सारे संसार को नवीन दिशा देने का सुखद कार्य किया। उन्होंने ममता, समता और बन्धुत्व की भावना को प्रतिस्थापित करने के लिए एकात्मक मानववाद का दर्शन प्रस्तुत किया। मूलसिद्धान्त के रूप में एक सुसंस्कृत शक्तिशाली समाज के निर्माण की रूप रेखा इसमें निहित है। डा0राम मनोहर लोहिया ने पण्डित जी के विचारों से प्रभावित होकर कहा था– उपाध्याय जी किसी भी समाजवादी से ज्यादा समाजवादी है। सिद्धान्त और नीति नामक पुस्तक में पण्डित जी ने लिखा है– कि ''समाज की कोई प्रगति तब तक नहीं आंकी या मानी जा सकती, जब तक समाज के सबसे निचली स्तर पर बैठे आदमी का उत्थान नहीं होता–उसका आर्थिक जीवनस्तर ऊँचा नहीं होता।''

के लिए समता, ममता, समरसता तथा एकात्मता का भाव चाहिए। सामाजिक समरत्ता स्थापित कराने हेतु दीनदयाल जी अलग से काम करने के स्थान पर अपने व्यवहार का आदर्श उपस्थित करते थे। जहां जहां इस तरह के कार्य की आवश्यकता होती थी वहां–वहां कार्यकताओं को उन्होंने प्रोत्साहित किया। उनके मार्ग में आने वाली कठिनाइयों को सरल बनाने की कोशिश की व अपने कई कार्यकर्ताओं को इन क्षेत्रों में काम करने के लिए भेजा। वह स्वंय इस बात का आग्रह करते थे कि प्रवास के समय उन्हें किसी हरिजनबस्ती में ही ठहराया जाय और यहां तक हरिजन बस्तियों में झांडू लेकर सफाई कार्य तक उन्होंने किया था।

अन्त्योदय कार्यक्रम पण्डित का एक महान रचनात्मक कदम था। इस कार्यक्रम के माध्यम से वह समाज के सबसे निचले स्तर पर बठे मानव तक विकास की किरणों का पहुँचाना चाहते थे। असहाय, बेजुवान, निरक्षर और साधनहीन लोगों को लाभांवित करके राष्ट्रीय विकास की धारा को गतिशील बनाना चाहते थे। वह दरिद्रनारायण को अपना अराध्य देव मानकर उनकी सेवा करना अपना कर्तव्य समझने लगे थे। उनकी कथनी करनी एक जैसी थी। उनका कहना था कि " वे लोग जिनके सामने रोजी रोटी का सवाल है। जिन्हें न रहने के लिए मकान है और न तन ढ़कने के लिए कपड़ा। अपने मैले कुचैले बच्चों के बीच दम तोड़ रहे है गांवों और शहरों के उन करोड़ो निराश भाई–वहिनों को सुखी व सम्पन्न बनाना हमारा लक्ष्य है।"

पण्डित जी कहा करते थे कि "केवल नारेबाजी से कोई काम नहीं चलेगा। जब तक उस मानव को, जो ऐसे क्षेत्रों में रहता हे। जहां आज प्रकाश नहीं है। जहां दरिन्द्रता और देव्य का सम्राज्य है। जहां उसके पॉव में विभाई फटी हुई है, जिसे

जूता पहनने के लिए प्राप्त नहीं है। उस निरक्षर , निरूत्साही और किंकर्त्तव्य विभूढ मानव को स्वस्थ और सुन्दर समाज का दर्शन नीं करा देते, तब प्रत्येक विचार शील एवं संवेदनशील व्यक्ति को ऐसे समाज के निर्माण के लिए सतत् कार्यरत रहना चाहिए।

पण्डित जी ने राष्ट्र के विराट को जागृति करने का श्रेष्ठ रचनात्मक कार्य अपनाया था। अपने गहन विचारों के द्वारा राष्ट् के प्रतयेक नागरिक के ह्दय में राष्ट्र हित की भावना भकर एक संगठित एवं शक्तिशाली राष्ट्र का निर्माण चाहते थे। भुजुर्वेद मे भी " वयं राष्ट्रे जगृयामः पुरोहिता" मन्त्र द्वारा यही मंशा व्यक्त की गयी है। हम जागते रहेगें यानि राष्ट्र को जागृत रखेंगें। राष्ट्र के अंग–अंग के रूप में यह जीवन कल्पना उनकी मौलिक उदभावना एवं प्रतिभा का परिणाम है। उसी के आधार पर राष्ट्रीयता की व्यापक एवं उदान्त अभिव्यक्ति हुइ है। एकता समग्रता और अखण्डता को प्रोत्साहन मिला गति मिली, इस अवधारना से वह स्पष्ट करना चाहते थे कि राष्ट्रहित, राष्ट्र इच्छा कसी भी मतवाद, जाति , सम्प्रदाय भाषा, नस्ता, प्रांतीयता से नितांत ऊपर है उसकी रक्षा सब प्रकार से होनी चाहिए। " माता भूमि; पुतोडहम् प्रथिव्या" पुत्रों को सभी प्रकार से ऊपर उठकर सब प्रकार से माता की रक्षा करनी चाहिए।

सन् 1952 के अंत और 1953 के प्रारमभ में जम्मू–कश्मीर के मुख्यमंत्री शेख अब्दुल्ला के अत्याचार वहां की जनता और उकसे विरोध में सत्याग्रह चलाने वाले ' प्रजा परिवद ' पर बहुत अधिक बढ़ गये अतः दिल्ली और पंजाब में सत्याग्रह शुरू हो गया।

सन् 1952 में कश्मीर सत्याग्रह की बागडोर पण्डित जी के हाथो में आयी उन्होंने इस आन्दोलन को रचनात्मक स्वरूप प्रदान किया। भारतीय जनसंघ के संस्थापक डा0श्यामाप्रसाद मुखर्जी भी हिन्दु शरणार्थियों को बसाने और कश्मीर के भारत में पूर्ण विलय की प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए सम्पूर्ण भारत में जागरण की लहर उत्पन्न करने का कार्य किया। जगह जगह बैठक एवं सभाओं का बृहत आयोजन करके इस सत्याग्रह को विराट जनआन्दोलन का स्वरूप प्रदान किया। इस आन्दोलन में डा0श्यामाप्रसाद मुखर्जी को जेल में डाल दिया गया जहां 40 दिन बाद संदिग्धवस्था में 23 जुलाई 1953 में उनकी मृत्यु हो गयी। जिससे आन्दोलन को स्थगित करना पड़ा लेकिन डा0मुखर्जी के सपने को साकार करने के लिए पं0दीनदयाल जी ने कोई कसर नहीं छोडी। सशक्त सम्पन्न और अखण्ड भारत का सपना उनके हद्य में अंकित था जो उनका मार्ग आलोकित करता रहा।

पंण्डित दीन दयाल जी का यह विश्वास था कि विषम समस्याओं से घिरे इस देश में सब प्रकार का समाधान सम्भव है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि देश के कर्णधार और समाज के जागरूक लोग निष्ठावान इसके लिए प्रयन्तशील हो। उनका कहना था कि यदि भारत की उन्नति होती है तो हम सबकों कर्मठ होकर परिश्रम करना होगा। उन्हें अपने अल्प जीवन में आभास हो गया था कि स्वतंत्र होने के बाद आम मातृवासी भौतिक रूप से अधिक सजग हो गया है उसका ध्यान धन संचय करने में अधिक है इससे व्यक्तिगत लाभ तो होगा लेकिन देश की उन्नति आपसी सहयोग और अधिक से अधिक परिश्रम से ही सम्भव है। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए जो त्याग किया उसे उससे दुगना त्याग व चौगुनी तपस्या की आवश्यकता है देश को समद्धिशाली बनाने के लिए। लेकिन वे इस बात से दुखी थे

कि स्वतंत्रता के पूर्व की तरह अब भी लोग एक दूसरे का शोषण कर रहे है उनका मानना था कि भारतवर्ष एक बहुत बड़ा कुटुम्ब है जिसके हर सदसय का जन्मसिद्ध अधिकार है कि उसे रोटी, कपड़ा और मकान अवश्य मिले। उसके जीने की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति हो। कार्य यह सोचकर किया जाना चाहिए कि यह भगवान का कार्य है और हमारा कर्तव्य है उन्होंने लिखा है–

'' राजा और रंक, पूंजीवाद और श्रमिक ,अमीर और गरीब सबको श्रम की साधना में जुड़ना होगा। श्रम से पराग एवं राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक संरक्षण समाप्त करने होगें। श्रम के लिए भटकती भुआओं को काम देना होगा। जहां राष्ट्र व्यापी श्रम है वहां निर्धनता और विषमता टिक नहीं सकती। जहां समता और सम्पन्नता है वही शिवतत्व एवं सौन्दर्य है।''

विद्यार्थी जीवन से ही पण्डित जी अत्यन्त परिश्रमी रहे है , स्वंय विषम परिस्थितियों में अध्ययन करना साथ–साथ अपने कमजोर मित्रों को पढ़ाना और प्रथम श्रेणी में पास होना उनके परिश्रम का ही फल था। पढ़ाई के साथ संगठन का कार्य करते हुए अन्य कार्यकर्ताओं के लिए आदर्श बन गये थे। भारतीय जनसंघ को देश में दूसरे नम्बर के दल के रूप में प्रतिस्थापित करने का श्रेय पण्डित दीनदयाल जी को ही है। अहर्निश प्रवास में रहने वाले पण्डित जी कभी परिवाहन के सुखद साधनों की अपेक्षा नहीं की। अपनी कर्म साधना में उन्होंने साधनों को कभी बाधक नहीं बनने दिया।

अपनी प्रतिभा के बल पर पण्डित जी ने जनसंघ रूपी नन्हें से पौधे को सींचकर पुष्पवित पल्लवित किया तथा एक विशाल वह वृक्ष के रूप में परिर्णित कर दिया। भारतीय जनसंघ के दिन प्रतिदिन बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर काग्रेंस में

घबराहट उत्पन्न होने लगी। जनसंघ के विरूद्ध भ्रामक प्रचार करने लगे, जनसंघ की छवि विदेशों में भी बिगाड़ने का प्रयास किया गया। अतः पण्डित जी अमेरिका, पश्चिमी जर्मनी,इग्लैण्ड तथा पूर्वी अफ्रीका का दौरा करके काग्रेंस द्वारा किये गये भ्रामक प्रचार का जबाब दिया। वहां पर पण्डित जी ने सभाओं को सम्बोधित किया। पण्डित जी के इस प्रवास का जनसंघ को बहुत ही लाभ हुआ। प्रवासी भारतीयों को स्पष्टीकरण प्राप्त हुआ और भारत के प्रति उनकी निष्ठाये बढ़ी तथा सुब्रह्मण स्वामी, श्री मनोहर लाल सोंधी तथा डा0नारायण स्वरूप शर्मा जैसे व्यक्तियों को पुनः भारत लौटने की प्ररेणा प्रदान की।

सन् 1963 में जौनपुर के संसदीय उपचुनाव में कार्यकर्ताओं ने जिद करके उन्हें खड़ा कर दिया जबकि उनकी इच्छा नहीं थी। पण्डित जी चुनाव बड़े सिद्धान्तों के आधार पर पूरी शक्ति से लड़े परन्तु काग्रेंस के प्रत्याशी की तरह चुनाव में जातिवाद उभारने तथा वोटो की खरीद करने से स्पष्ट मना कर दिया। अतः पण्डित जी चुनाव हार गये और बड़ी उदारता के साथ पत्रकारों के बीच अपनी हार को हंसकर स्वीकार कर लिया '' अरे भाई मुझे तो हारना ही था, काग्रेंस का प्रत्याशी मुझसे कही अधिक योग्य था और बहुत वर्षो से इस क्षेत्र में जनसेवा कर रहा था।'' अर्थात सुख और दुख, जय और पराजय गीता में स्थिति प्रज्ञ ऋषि की तरह उनके लिए समान थे।

सन् 1967 तक पहुँचते पहुँचते श्रीमती इन्दिरा गांधी के नेतृत्व में काग्रेंस पार्टी का पतन प्रारम्भ हुआ। दिसम्बर 1967 भारतीय जनसंघ के इतिहास में सर्वाधिक महत्व का था वह विराट का दर्शन कराने वाला महापुरूष जनसंघ का अध्यक्ष बनकर दक्षिण पथ की ओर अपना पावन संदेश देने को चला।

कालीकट में जनसंघ का राष्ट्रीय अधिवेशन हुआ, पण्डित जी की अध्यक्षता का समाचार देश के कोने कोने में फैल गया। कार्यकर्ता खुशी से झूम उठे, काली कट पहुचने के लिए उतावले हो उठे। केरल की कम्युनिष्ट सरकार एवं उसके मुख्यमंत्री नम्बूदरीपाद ने सब प्रकार के रोड़े अटकाए लेकिन जनसैलाब को रोका नहीं जा सका। शोभा यात्रा तो अभूतपूर्ण थी मानो सारा केरल उमड़कर सड़को पर आ गया है। कालीकट की सड़के फूलमालाओं से भर गयी, केशरिया रंग में नहा गयी। जयकारों से गगन गूँज उठा। पण्डित जी का अध्यक्षंणीय भाषण अभूतपूर्ण था। देश की किसी भी ज्वलन्त समस्या को नहीं छोड़ा था सभी का निदान भी प्रस्तुत किया। कुछ कम्यूनिष्ठ नेताओं ने अपना नाता संघ से जोड़ लिया वही संदेश उसका आखिरी संदेश हो गया। विश्व के सम्पादकों ने उसकी प्रंशसा में अपनी लेखनी तोड़ दी।

(च) <u>अर्थ चिन्तन :–</u>

पं0दीनदयाल जी का आर्थिक चिन्तन वास्तविकता पर आधारित था। वे मनुष्य और मनुष्य के बीच दिखावटी सम्बन्धों से सन्तुष्ट नहीं थे। उनका मानना था कि जहां एक ओर शोषण हो, गरीबी,भुखमरी हो दूसरी ओर अर्थ चिन्तन पर एकाधिकार हो वहां मनुष्य का मनुष्य से किसी भी प्रकार सम्बन्ध बेमानी हैं इस प्रकार की आर्थिक विषमता को दूर करके ही व्यक्ति को सम्मान एवं प्रतिष्ठता प्राप्त हो सकती है।

पण्डित जी के आर्थिक परिकल्पना का आधार करोड़ों भूखे नंगे इंसान है वह कहते थे कि भारतीय संस्कृति में वर्णित पूर्ण मनुष्य की व्याख्या इन्हीं में निहित है। ऐसे किसी सामान्य व्यक्ति से देश धर्म, साहित्य के बारे में चर्चा करने पर उत्तर

प्राप्त होता है कि–

" भूल गये राग रंग, भूल गयी छकड़ी।

तीन चीज याद रहीं, नोन तेल लकड़ी "

अर्थात बहुजन समाज नमक, तेल एवं लकड़ी की चिनता में ही दिन महीने और वर्ष विताता हुआ अपने जीवन की घड़ियॉ काट जाता है जीवन के शेष प्रश्न कभी उसके सामने आते ही नहीं। ऐसे व्यक्तियों को सम्पन्न बनाने वाली आर्थिक नीति का अनुभरण भारत को करना चाहिए। यही हमारा वृत और संकल्प होना चाहिए।

आर्थिक लोकतंत्र की अवधारण में दीनदयाल ने महसूस किया कि भारतीय चेतना प्रकृति से प्रजातंत्रीय है। राजनीति के क्षेत्र में हम इसके भाव का स्वबोध कर रहे है। आर्थिक क्षेत्र में भी प्रजातंत्र का उदय जरूरी है। जिस प्रकार राजनीतिक शक्ति का प्रजा में विकेन्द्रीकरण करके शासन की संस्था का निर्माण किया जाता है उसी प्रकार आर्थिक शक्ति का प्रजा में विकेन्द्रीकरण करके अर्थव्यवस्था का निर्माण और संचालन होना चाहिए राजनीति की भांति ही आर्थिक लोकतंत्र में व्यक्ति को अपनी रचनात्मक क्षमता अभिव्यक्ति करने का अवसर प्राप्त होता हे। पण्डित जी का कहना था कि प्रत्येक व्यक्ति को काम अर्थव्यवस्था का आधारभूत लक्ष्य होना चाहिए।

प्रत्येक हाथ को काम की अवधारणा में उन्होंने आर्थिक लोकतन्त्रों की प्राध्थमिक इकाई को समृद्ध सबल और सशक्त बनाने पर बल दिया। ग्राम कृषक लुहार, बढ़ई, जुलाहा नाई, धोबी और चमत्कार आदि प्राथमिक इकाईयों के अतिरिक्त गांव में लगाये जाने योग्य कुटीर उधोगों की समृद्धि पर बल दिया। उनका विचार था

जिस प्रकार राजनीति में तानाशही, व्यक्ति की रचनात्मक क्षमता को समूल नष्ट कर देती है , उसी प्रकार अर्थनीति में किया गया भारी पैमाने में औधोगिकीकरण व्यक्ति की रचनात्मक क्षमता को नष्ट कर देता है। ऐसे उधोगों में व्यक्ति स्वंय एक पुर्जा बन कर रह जाता है।

उपाध्याय जी विकन्द्रीकरण के आधार उधोग लगाने के पख में थे वे कहते थे कि आर्थिक क्षेत्र में व्यक्ति की क्षमता के पूर्ण प्राकट्य का मौका मिलना चाहिए अतः अर्थ के केन्द्रीकरण का विराधे करते हुए कहते थे कि जब लोगों को बड़े पैमाने पर उत्पादन करने का अवसर नहीं मिलेगा तो पूंजी एकत्र नहीं होगी और असमानता नहीं आयेगी। पण्डित जी का मानना था कि औधोगिक विकेन्द्रीकरण की तरह कृषि क्षेत्र का भी विकेन्द्रीकरण होना चाहिए।

उपाध्याय जी अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में समन्वयवादी थे। उनका कहना था कि न तोह में समाजवाद चाहिए और न ही पूंजीवाद वरन् मनुष्य की प्रगति और प्रसन्नता हमारा ध्येय है। इसके लिए उन्होंने काम के निर्धारण पर बल दिया। खेत के मालिकों और कारखानों के मालिकों के साथ मजदूरों का समबन्ध होना चाहिए। धन मे सबका बराबर भाग होना चाहिए। क्योंकि धन की पूंजी और श्रम की पूंजी। अतः अन्य दोनो को उचित मात्रा में चाहिए।

(छ) अन्तिम काल–

"फरवरी 1968 को भारतीय जनसंघ के ससंदीय दल की बेठक नई दिल्ली में होना निश्चित हुई, क्योकि फरवरी मे ससंद का बजट सत्र होता है। इसी तिथि को बिहार प्रदेश, भारतीय जनसंघ की कार्यकारिणी की बैठक पटना में होनी वाली थी। 10 फरवरी को प्रातः काल बिहार प्रदेश जनसंघ के संगठनमंत्री श्री अश्विनी कुमार ने

फोन पर पण्डित जी की स्वीकृति प्राप्त कर ली। लखनऊ से सांयकाल 6 बजे चलने वाली पठानकोट स्यालदाह एक्सप्रेस से पण्डित जी पटना के लिए रवाना हुए। लेकिन " स्यालदाह पठानकोट एक्सप्रेस सीधी पटना नहीं जाती थी। अतः मुगलसरायं स्टेशन पर जब यह गाडी 2'15 बजे प्लेट फार्म नं01 पर पहुँचती तो यह बोगी इस गाडी से काट कर दिल्ली–हावड़ा में जोड़ दी गयी जो लगभग 2.50बजे पर मुगेलसरायं से रवाना हुई। गाड़ी छूटने के लगभग 45मिनट के वाद मुगलसरायं स्टेशन के "लीवर मैन ने टेलीफोन पर सहायक स्टेशन मास्टर को सूचना दी कि स्टेशन से लगभग 150गज पहले बिजली के खम्भा नं0 1276 के नजदीक एक लाश कंकड़ो पर पड़ी हुई है। पलिस ने सिपाही डयूटी पर लगा दिये गये। सहायक स्टेशन मास्टर ने जो मेमो पुलिस को भेजा ऊपर लिखा आलमोस्ट डेड।" (1)

प्रातः काल होने तक रेलवे डाक्टर घटना स्थल पर पहुँचकर जाूच पड़ताल करने के बाद पूर्णतः मृत घोषित कर दिया। शव को कोई पहचान न सका और उसे लावारिस घोषित कर दिया गया। लगभग 6 घण्टे बाद शव को मुगलसराय प्लेट फार्म पर रखा गया। उत्सुकतावश अनेकानेक लोग शव को देखने लगे। जनसंघ के एक कार्यकर्ता ने शव पहिचान लिया और बोला " आरे यह तो जनसंघ` अध्यक्ष पण्डित दीनदयाल जी उपाध्याय है। " पल भर मे यह दुखद समाचार सारी जनता में फैल गया। पूज्यनीय गुरू जी को फोन पर सूचित किया गया। ससंदीय दल की बैठक समाप्त कर दी गयी। देश के कोने कोने से जनसंघ के कार्यकर्ता/अधिकारी दीनदयाल जी के मित्र–आत्मीय उनके अन्तिम दर्शन के ए दिल्ली पहुँचने लगे। क्योंकि उनका शव भारतीय वायुसेना के विमान से दाह संस्कार हेतु दिल्ली

---

(1) पंडित दीनदयाल उपाध्याय– व्यक्तिदर्शन अध्याय–2 अन्तिम दर्शन
सम्पादक– कमलकिशोर गोयनका

डा0राजेन्द्र प्रसाद मार्ग लाया गया था । लगभग पॉच लाख लोगों ने उनकी शवयात्रा में भाग लिया। पुष्पवर्षा माल्यार्पण भावभीनी अश्रुपूरित श्रद्वांजलि और रूदन सिसकियों का प्रवाह बना रहा तथा अभाग्नि दिल्ली, किंकर्तव्य विमूढ़ सी अपनी छाती पर व्रजधात सहती रही। शवयात्रा छःबजे अन्तिम श्रद्वान्जिल अर्पित की गयी। अनेकानेक वरिष्ठ अधिकारियों एवं नेताओं ने इसमें भाग लिया। 7.06 बजे अग्नि प्रज्जवलित कर दी गयी।। शोक विहवल जनता अपने आपको भी संभालने में असमर्थ थी। अपार जनसमूह भी सिसकियों से ऐसा लगा रहा था मानो हर एक अपना निजी लाल खो दिया हो।

अनेकानेक नेता सामाजिक कार्यकर्ता संगठन एवं पत्रकारों ने श्रद्धान्जलि अर्पित करते हुए अपनी अपनी ह्दय वेदना को व्यक्त किया।

डा0जाकिर हुसैन राष्ट्रपति भारत गणतंत्र– " मुझे श्री दीनदयाल जी की मृत्यु की खबर सुनकर गहरा आधात लगा। और श्री वी0वीगिरि उपराष्ट्रपति भारत गणतंत्र– श्री उपाध्याय भारत मॉ के महान पुत्र थे उनके निधन से एक बहुत बड़ा राष्ट्रवादी कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति भारत ने खो दिया है।

श्रीमती इन्दिरागांधी–प्रधानमंत्री भारत सरकार " श्री उपाध्याय देश के राजनीतिक जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे थे। जनसंघ और काग्रेंस के बीच मतभेद चाहे जो हो मगर श्री उपाध्याय सर्वाधिक सम्मान प्रान्त नेता थे उन्होंने अपना जीवन देश की एकता और संस्कृति को समर्पित कर दिया था।

श्री नीलम संजीव रेड्डी–अध्यक्ष लोकसभा– श्री उपाध्याय एक स्वार्थ रहित और निष्ठावान कार्यकर्ता थे उनको खोकर देश गरीब बना रहेगा।

चौधरीचरण सिंह मुख्यमंत्री– उत्तर प्रदेश– '' श्री उपाध्याय देश के सार्वजनिक जीवन में अग्रेंजी व्यक्ति थे उनके निधन से देश का जन जीवन विपन्न हो गया है।''

श्री रतनलाल जोशी, तत्कालीन सम्पादक, दैनिक हिन्दुस्तान, ''राजनीति में अनेक नेता आयेंगें पर यह अभागा राष्ट्र दीनदयाल के लिए तरेगा। ''

राष्ट्रकवि सोहनलाल द्विवेदी ने लिखा है–

'' फिर रक्त रंजिता हुई दिशा,
दिन में ही दाई निविड़ निशा
कैसा यह वृजनिपात हुआ?
यह चला छोड़कर कौन साथ
हम लगे है, जैसे अनाथ
कैसा आकस्मिक धात हुआ।'' (1)

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय का राजनीतिक विरासत के सबसे प्रमुख उत्तराधिकारी एवं तत्कालीन भारत के प्रधानमंत्री जनसंघ के अध्यक्ष माननीय अटल बिहारी बाजपेयी द्वारा श्रृद्धान्जलि स्वरूप व्यक्त विचार आज भी कितने सुसंगत है।

'' हमारा मित्र पथ प्रदर्शक और नेता चला गया। ऐसा लगता है जैसे दीपक बुझ गया हो और चारो ओर अंधेरा हो, नेत्रदीप बुझ गया हो, अपने जीवन दीप जलाकर अन्धर से लड़ना होगा सूरज छिप गया, हमें तारों की छॉव में अपना मार्ग ढूंढना होगा।

---

(1) उत्तर प्रदेश संदेश — सितम्बर 1991 अंक–9
पंडित दीनदयाल उपाध्याय विशेषांक

श्री वचनेश त्रिपाठी पण्डित दीनदयाल जी के साथ रहकर पत्रकारिता का कार्य करने वाले राष्ट्रधर्म पाजन्य के प्रमुख लेखक,

'' सिर बांध कफनिया शहीदों की टोली निकली। गीत हरदम गुनगुनाने वाले पण्डित जी ।। फरवरी सन् 1968 को खुद शहीद हो गये।''
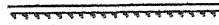
अध्याय तृतीय

महामना मदन मोहन मालवीय जी का जीवन वृत्त तथा कृतित्व –

महामना जी की शैक्षिक विचारधारा का सांगो पांग अध्ययन करने हेतु आवश्यक है कि उनके जीवन वृत का वृहत एवं विस्तृत अध्ययन किया जावे। अतः शोधकर्ता मालवीय जी के जीवन वृत्त को प्राप्ति साहित्य के आधार पर निम्न प्रकार प्रस्तुत कर रहा है।

(क) जन्म और शिक्षा–

पंडित मदन माहन मालवीय जी के नाम की ख्याति " मालवीय जी महाराज " के रूप में तथा सम्पूर्ण राष्ट्र उन्हें "महामना" के नाम से सम्बोधित करता थां। इसी परम्परावादी स्वामिभानी एवं सुसंस्कृत पारिवारिक परिवेश में महापुरूषों द्वारा अभिनन्दित एवं गौरव प्रदत्त पण्डित मदन मोहन मालवीय जी का जनम सन् 1857 के विप्लव के चार वर्ष पश्चात पौष कृष्ण पक्ष 8, संवत् 1918 वि0 (25 दिसम्बर 1861) बुधवार के दिन प्रयाग नगरी के लालड़िगी मुहल्ले में हुआ था जिसे आज "भारतीय भवन" नाम से सम्बोधित किया जाता हे। महामना जी के सात भाई बहिने थी। इनके पिता का नाम बृजनाथ था। प्रारम्भ से ही मालवीय जी सामाजिक रूचि एवं रचनात्मक दृष्टि के व्यक्ति थे।

(ख) प्रारम्भिक शिक्षा–

भाईयों के समान ही महामना की प्रारम्भिक शिक्षा परिवार में हुई, इनकी वास्तविक औपचारिक शिक्षा पांच वष्र की व्यवस्था में पाठशाला में प्रारम्भ हुई जहां विशेष रूप से मेहाजनी की शिक्षा प्रदान की जाती थी। पंडित देवकी नन्दन ने "

महामना जी को धार्मिक बौद्धिक करने का प्रशिक्षण प्रदान किया तथा उन्हें किसी चौराहे के ऊँचों चबूतरे पर खड़े होकर धार्मिक प्रवचन करने को प्रेरित करते है।'' (1) सम्वतः मालवीय जी ने यहीं से भाषण करने की कबना एवं समाज सेवा की भावना ग्रहण की।

हिन्दी तथा संस्कृत विद्यालयों में कुछ वर्ष तक विद्याध्ययन के पश्चात् मालवीय जी को इलाहाबाद जिला विद्यालय में प्रवेश दिलाया गया, क्योंकि इनकी इच्छा अग्रेंजी शिक्षा प्राप्त करने की थी। मालवीय जी वाल्यकाल में मट्ठा रोटी खाकर विद्यालय जाते थे परिवार बड़ा होने के कारण समय पर भोजन व्यवस्था करना सम्भव नहीं हो पाता था। बड़ा परिवार होने के कारण पढ़ाई घर पर नहीं हो पाती थी अतः संध्या वेला में मदन मोहन निकट के मार्ग में जाकर लालटेन के प्रकाश में अध्ययन कार्य किया करते थे।

विद्यालय जीवन में मालवीय जी ने गायत्री क्लब का निर्माण किया और उन्हें शारीरिक स्वास्थ्य के प्रति अभिरूचि विकसित की। इसकी पूर्ति के लिए नित्य अखाड़े जाते , व्यायाम करते और कुश्ती लड़ते थे। इनके विद्यालयी जीवन में विशेष शैक्षणिक उपलब्धि नहीं रही परन्तु '' उन्होंने गायन में प्रवीणता अर्जित की थी। उन्हें सितार वादन की प्रतिभा भी प्राप्त थी।''(2) महामना ने ' स्कूली दिनों में ही '' स्वदेशी की शपथ ग्रहण कर ली थी।'' (3)

---

(1) कोमेमोरेशन वोल्यूम पृष्ठ 1041

(2) त्रिपाठी आर0एन0– तीन दिन मालवीय जी के साथ पृष्ठ 185 तथा
स्मृति गृन्थ पृष्ठ 1050

(3) आज– 12 अगस्त 1927

मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् मदन मोहन 'म्योर सेन्ट्रल कालेज' इलाहाबाद में अध्ययन करने लगे। इनकी माता ने अपार कष्टों को सहन करते हुए मालवीय जी के अध्ययन में सहयोग प्रदान किया। इन्होंने अपने कालेज की फ्रेण्डस डिवेटिंग सोसायटी में सर्वप्रथम अग्रेंजी भाषा में भाषण दिया। जिसमें लोगों ने मालवीय जी का उत्साह वर्धन किया। सन् 1884 में महामना ने बी0ए0 की उपाधि इतिहास, अग्रेंजी तथा संस्कृत विषयों के साथ उत्तीर्ण की। " मालवीय जी की रूढ़िवादी पृष्ठभूमिउनके तथा सहपाठियों के बीच कभी भी भेद की दीवार नहीं खींच सकी उनका एक सहपाठी मित्र अहूत वर्ग का था। " (1)

(ग) पाणिग्रहण संस्कार–

भारतीय संस्कृति तथा सामाजिक व्यवस्था पर मध्यकाल में मुस्लिम प्रभाव के कारण देश में बाल विवाह प्रारम्भ हो गये थे जो परम्परागत रूप से आज भी भारतीय समाज में दृष्टिगोचर होते है।इसी का प्रभाव श्रद्धेय मालवीय जी के ऊपर भी देखने को मिला। आपका दाम्यत्य जीवन सोलह वर्ष की छोटी अवस्था में प्रारम्भ हुआ। इसका विवाह मिर्जापुर निवासी पण्डित नन्दलाल जी की कन्या कुन्दन देवी से हुआ। कुन्दनदेवी स्वंय में भारतीय हिन्दु संस्कृति की जीवन्त प्रतिमाा थी।

मालवीय जी पारिवारिक विवशता से वशीभूत होकर माल चालीस रूपये मासिक वेतन पर अध्ययन कार्य पुराने हाईस्कूल में करना स्वीकार कर लिया। मालवीय जी अपने वेतन का अधिकांश अंश पारिवारिक व्यय के लिए मॉ को दे दिया करते थे और अपनी पत्नी कुन्दन देवी को मात्र दो रूपये निजी व्यय के लिए दिया करते थे। मालवीय जी ने अध्यापकीय कर्तव्य का पालन पूर्ण निष्ठा एवं परायणता के

---

(1) आज– समाचार पत्र. 24 मई 1926

साथ किया, वे अपने छात्रों के ऊपर पूरा नियंत्रण रखते थे। क्योंकि मालवीय जी एक अनुशासन प्रिय शिक्षक थे। " इसके साथ ही साथ उनके छात्रों को जब भी और जिस प्रकार की भी सहायता अथवा सहयोग की आवश्यकता होती वे सदैव किया करते थे।" [1]

मदनमोहन मावलयी जी का व्यक्तित्व निम्न पंक्तियों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो जाता है–

" ऋद्धेय मालवीय जी का व्यक्तित्व अपने ढंग का अनूठा था वे जैसे धपाल वस्त्रधारी थे, उनका ह्दय भी वैसा ही था द्वेष और ईर्ष्या के वशीभूत होकर उन्होंने कभी कार्य नहीं किया। मालवीय जी नैतिकता के पुजारी थे । वे जिधर विचरे, उन्हें श्रेष्ठतम् स्थान मिला। मालवीय जी उन महानतम् विभूतियों में से एक है, जिन्हें देश एक पथ प्रदर्शक एवं शिक्षा विद् के रूप में सदैव स्मरण करेगा। [2]

(घ) सार्वजनिक जीवन एंव सम्पादीय कार्य–

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है वह सौन्दर्य का उपासक होता है। जीवन की व्यस्तता से जब प्राणी ऊब जाता है तब वह ऐसे आनन्द की खोज करता है जिसने वह शान्ति और मानसिक सुख को प्राप्त कर सके।

महामना जी ने आधुनिक व्यास के रूप में देश और जाति के सर्वांगीण अभ्युदय की भावना से अपने पूज्य पूर्वज व्यास जी के उपदेश...................... उठिये, जागिये, होइए, आशु कार्य संलग्न। " होगा निश्चित राखिए, सदा सुफल यत्न " [3] में मूलमंत्र बनाकर , उनके स्वर में अपना स्वर मिलाकर बसन्त पंचमी के ही दिन

---

(1) द्विवेदी कृष्णदत्त– भारतीय पुर्नजागरण और मदन मोहन मालवीय पृष्ठ–20
(2) त्रिपाठी चन्द्रवली– मालवीय जी– जीवन झलकियां पृष्ठ–119
(3) व्यास कृत महाभारत

सन् 1907 ई0 को तीर्थराज प्रयाग में साप्ताहिक "अभ्युदय" का प्रकाशन प्रारम्भ किया। अभ्युदय महामना जी के विचारों का वाहन था।

महामना जी ने "अभ्युदय" द्वारा अपने ध्येय की पूर्ति हेतु उन्होंने कठोर साधना की। भगवान ने उनकी पुकार सुनी और बसन्त पंचमी 1916 के अंक में अभ्युदय ने "सोने का दिन" लेख द्वारा सम्पूर्ण विश्व में भागीरथी के तट पर भारती की उपासना का विशाल मन्दिर काशी हिन्दु विश्वविद्यालय की स्थापना की घोषण कर अपना दसवां जन्मदिन मनाया। हिन्दू विश्वविद्यालय के गगन चुम्बी प्रसादों में अभ्युदय का इतिहास था कि न हो, किन्तु अभ्युदय के जराजीर्ण पत्रों में हिन्दू विश्वविद्यालय का इतिहास अवश्य अंकित है। अपने ' अभ्युदय' के जीर्ण पत्रों में मदन मोहन ने हर्ष घोष किया था।

" जयतु विश्वविद्यालय काशी । सरस्वती, वाराणसी प्रकाशी।।

तिमिर अज्ञान विनासी। जयतु विश्वविद्यालय काशी।। [1]

मदन मोहन मालवीय एक अभूतपूर्व क्रान्तिकारी नता थे जिनमें राष्ट्र की प्रगति को लक्ष्य मानकर उसकी पूर्ति सम्बन्धी समस्तगुणों का समावेश था। सन् 1905 में इन्होने "सनातन धर्म महासभा" का निर्माण किया जिसका प्रथम अधिवेशन 1906 में प्रयाग में हुआ।

इस प्रकार मदन मोहन के सार्वजनिक जीवन एवं उनके सम्पादन कार्य को देखते हुए शोधकर्ता अनुभव करता है कि मालवीय जी का प्रत्येक कार्य जन–जागरण एवं शिक्षा से ओत प्रोत था। सम्पादक के रूप में मदनमोहन निर्भीक एवं पक्षपात रहित थे। वे व्यर्थ में किसी पर आरोप प्रत्यारोप नहीं करते थे। उनकी आलोचनाएं

---

(1) तैयार– मालवीय जी जीवन झलकियां–
भूमिकांश वाराणसी विश्वविद्यालय प्रकाशन 1962

स्वस्थ्य होती थी उन्होंनें सम्पादन एवं पत्रकारिता के माध्यम से भ अपने परम लक्ष्य को प्राप्त करने का निरन्तर प्रयास किया जिसका स्पष्ट प्रभाव " अभ्युदय" आदि पत्रों की श्रृंखलाएं है।

(ड.) महामना जी के रचनात्मक कार्य–

महामना का सम्पूर्ण जीवन स्वंय में कियात्मकता एवं व्यवह्तता का प्रतीक है। उन्होंने जो कुछ कुछ उसे कर दिखाया। महात्मागांधी महामना को भिखारियों का सम्राट' पद से विभूषित करते थे एवं महामना जी स्वंय अपने को कुशल भिखारी कहा करते थे इस सम्ध में महामना की निम्न पंक्तियां लिखना अनुपयुक्त न होगा।

मारि जॉऊ मांगू नहीं, अपने हित के कारण।
पर कारसहित मांगिते, योहि न आवत लाज।।

"महामना ने पुरूषोत्तम दास टण्डन को आगे करके हिन्दी साहित्य सम्मेलन का कार्यालय प्रयाग में स्थापित करवाया।टण्डन जी को उसका संचालन करने के लिए प्रोत्साहित किया। महामना एवं टण्डन जी के सम्बन्ध अतीत निकटस्थ एवं आत्मीयता पूर्ण थे। महामना को टण्डन जी अपना राजनीतिक गुरू मानते थे उन्होंने टण्डन जी को विद्यार्थी जीवन में सार्वजनिक सेवा की प्रथम प्रेरणा दी थी।" (1)

महामना जी स्वंय सर्वजन हितयार्थ तत्पर रहा करते थे। शिक्षा की समस्या या विद्यार्थियों की समस्या को वे पल भर भी सहन न कर पाते थे। " छात्रावास की कमी के कारण होने वाले छात्रों के कष्ट को देखकर महामना हिन्दु छात्रावास निर्माण हेतु चन्दे के लिए यंत्र–तंत्र भटकने लगे और अपने अथक प्रयासों द्वारा 1903 में छात्रावास के निर्माण का कार्य पूरा किया। इस छात्रावास में 230 विद्यार्थियों के रहने

---

(1) द्विवेदी कृष्णदत्त– भारतीय पुर्नजागरण एवं मदनमोहन मालवीय पृष्ठ–16

की व्यवस्था थी। [1] महामना जी की सबसे बड़ी कमजोरी पर पीड़ा को सहन न करवाया था।

सन् 1912ई0 में महामना ने अर्द्धकुम्भ के अवसर पर अपने ज्येष्ठ पुत्र रमाकान्त मालवीय की सेवा कार्य हेतु प्रोत्साहित किया। उनकी आज्ञा पालन करते हुए रमाकान्त मालवीय ने एक ''सेवादल का गठन किया जिसके माध्यम से रमाकान्त ने अर्द्धकुम्भ के अवसर पर जनता की भरपूर सेवा की। बाद में इसी समिति का पुर्नगठन किया गया और सेवादल का नाम परिवर्तित करके ''प्रयाग सेवा समिति कर दिया गया। महामना जी इस समिति के अध्यक्ष चुने गये। सन् 1918 में यह समिति ; अखिल भारतीय संस्था; के रूप में प्राख्यात हुई्‌ सन् 1919 में इस समिति ने मार्शल ला के समय में पंजाब की जनता की अतीव सेवा की। यह संस्था पूर्णतया देश भक्ति पर आधारित थी इस संस्था में स्काउट देशभक्ति की शपथ लेते थे एवं वन्देमातरम् गीत गाते थे।

(च) महामना मदन मोहन मालवीय की व्यवहारिक गतिविधियां–

महामना अपनी हिन्दू विश्वविद्यालय की आवाज एक बार उठाकर शान्त न रह सके और उन्होंने पुनः अपनी वाणी को प्रतिध्वनित किया। उनकी विश्वविद्यालय सम्बन्धी योजना को भारतवासियों ने काफी सराहा। इससे सम्पूर्ण राष्ट्र में हर्ष एवं उल्लस की एक लहर दौड़ गयी, परिणाम स्वरूप अगले ही दिन महामना की योजना की घोषणा काग्रेंस अधिवेशन में कर दी गयी।

---

(1) द्विवेदी कृष्णदत्त– भारतीय पुर्नजागरण एवं मदनमोहन मालवीय पृष्ठ–16

महामना अपने भारतीय समाज के प्रबुद्ध साधुवर्ग को कर्तव्य मार्ग से विचलित होता नहीं देखना चाहते थे। अतः राष्ट्रीय हित इस वर्ग विशेष को जागृत किया। महामना के अनुसार जो शक्ति इस वर्ग में है वह अन्य किसी वर्ग में नहीं है और जो कार्य यह वर्ग कर सकता है वह जनसाधारण के वश में नहीं , अतः महामना ने इस बुद्धिजीवी एवं शक्ति शाली वर्ग का सहयोग प्राप्त कर विश्वविद्यालय की मांग को प्रबल रूप में मुखिरित किया।

सन् 1910 में महामना ने योजना को साकर रूप प्रदान करना प्रारमभ कर दिया। इस सन् 1907 में श्रीमती एनीवेसेन्ट ने " यूनिवर्सिटी आफ इण्डिया" नामकरण का काशी हिन्दु विश्वविलय की स्थापना का निश्चित किया तथा चार्टर के लिए सम्राट के पास आवेदन पत्र भेजा। एनीवेसेन्ट का स्वप्न आवासीय विश्वविद्यालय का था बाद में श्रीमती एनीवेसेन्ट ने महामना के सपनों को साकर करने के लिए अपनी यूनिवर्सिटी आफ इण्डिया की योजना को स्थगित कर दिया, साथ ही अपने सेन्ट्रल हिन्दु कालेज को हिन्दू विश्वविद्यालय की सफलता के लिए महामना को समर्पित कर दिया।

पृथक–पृथक कार्य योजना बनाते हुए सफलता मिलना दुष्ट समझकर महामना और एनीवेसेन्ट ने साथ मिलकर कार्य करने का निश्चित किया और इस विषय में प्रथम प्रयास स्वरूप "हिन्दू यूनीवर्सिटी " की स्थापना हेतु 28 नवम्बर 1911 ई0 को श्री रामेश्वर सिंह की अध्यक्षता मे हिन्दु यूनिवर्सिटी नामक संस्था काशी में स्थापित की। मालवीय जी के विश्वविद्यालय स्थापना यज्ञ में पं0सुन्दरलाल जी का सहयोग करना यह प्रदर्शित करता है कि वे कितने कर्मठ तथा अडिग विचारों के स्वामी थे इस संस्था के सृजन के पश्चातृ ही महामना विश्वविद्यालय निर्माण के लिए अथक

एवं अटूट प्रयास करने लगे। इसके लिए वे गली–गली ,नगर–नगर भ्रमण कर चन्दा एकत्रित करने लगे। इसके लिए क्या हिन्दू क्या सिख और क्या मुसलमान, उन्होंने सबे आगे दान पात्र प्रस्तुत किया जिससे एकता के प्रतिरूप सम्पूर्ण देश में कर्मयज्ञ की शाखाऐं सर्वत्र प्रज्वलित हो गयी। सतत् लगन तथा घोर परिश्रम करने में महामना को विचित्र विचित्र अनुभव हुए। कुछ स्थानों पर तो महत्वपूर्ण एवं सनसनी पैदा करने वाली घटनाएं घटित हुई।

महामना के व्याख्यानों में ऐसी अपरिमित शक्ति थी कि अनायास ही लोग उनसे प्रभावित होकर कुछ भी करने को तैयार हो जाते थे। एक बार महमना पटना की सार्वजनिक सभा में बोल रहे थे। चूंकि देहात की भीड़ अधिक थी। अतः महामना देहाती भाषाम` ही व्याख्यान कर रहे थे, व्याख्यान इतना प्रभावशाली था कि महिलाए प्रभावित होकर अपने चॉदी के आभूषण मंच पर फेंकने लगी। महामना ने बड़े प्रेम से उन्हें बटोरा और कहा कि ये आभूषण मेरे लिए लाखों रूपये के दान से अधिक मूल्यवान है। कोई सज्जन इन चीजो की कीमत चुकाना चाहेगे । इस पर एक धनी व्यक्ति ने दस हजार रूपये देकर उन आभूषणों को खरीद लिया।

महामना जी में विलक्षण वाक्पटता थी । उपर्युक्त घटना पदर्शित करती है कि महामना संकुचित दृष्टिकोण के व्यक्ति नहीं थे, उनके विचारों में विशालता थी। उनकी दृष्टि में मानवीयता ही सबसे बड़ा धर्म एवं जीवन का मूल्य था। हिन्दू धर्म को राष्ट्र धर्म मानने वाले, हिन्दू धर्म एवं संस्कृति के रक्षम महामना सही अर्थो में मानवता के रक्षक थे। महामना के मन को लालच कदाचित स्पर्श भी न कर सका था उनकी महत्वपूर्ण विशेष्ता वह थी कि उन्होंने अपने किसी भी सम्बन्धी को अपने जीवनकाल में हिन्दू विश्वविद्यालय में वैतनिक पद पर नहीं आने दिया। एक बार उनके निकट

सम्बन्धी की नियुक्त विश्वविद्यालय मे एक उत्तरदायी पद पर हो गयी। जब महामना को यह ज्ञात हुआ तो तत्काल उन्होंने उपकुलपति डा0राधाकृष्णन को लिखा कि नियुक्त व्यक्ति मेरा सम्बन्धी है इसलिए उसकी नियुक्त नहीं होगी। ऐसे थे महापुरूष । (1)

(छ) सरकार से विरोध–

महामना ने अपने सिद्धान्तों को दृढ़ एवं अडिग बनाएं रखते हुए अपने लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सरकार से संघर्ष करने में भी संकोच नहीं किया। अपने मन में सोची योजना को साकार स्वरूप प्रदान करने के लिए वे खाली बैठे रहना जानते ही नहीं थे। वह निरन्तर अपने मार्ग में आने वाली बाधाओं से जूझते रहते थे। सरकार भी किसी प्रकार की बाधा मुक्त ढीलीनीति उन्हें रास नहीं आती थी वह अपने स्वर को लगातार ओजस्वी बनाते जा रहे थे, जिसके कारण सम्पूर्ण राष्ट्र की जनशक्ति योजना के साथ कदम से कदम एवं स्वर से स्वर मिलाकर लक्ष्य प्राप्ति की ओर अवाध रूप से अग्रसारित हो रही थी।

(ज) शिक्षा का माध्यम मातृभाषा–

मानव मे सीखने की प्रक्रिया का विकास जन्म के साथ ही होता है अतः वह अपने विचारों की अभिव्यक्ति मातृभाषा के माध्यम से ही सुगमता पूर्वक कर सकता है। मानव के मानसिक विकास में मातृभाषा मॉ के दूध के समान ही, महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है मातृभाषा जीवन के सभी कार्यो का आधार होती है। महामना के अनुसार– मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा का प्रभाव गूढतर एवं चिरस्थायी होता है

---

(1) चतुर्वेदी सीताराम—— आधुनिक भारत के निर्माण पृष्ठ 97

जबकि विदेशी भाषा या आरोपित भाषा के माध्यम से प्राप्त ज्ञान छिछला एवं अल्पकालिक होता है।

इस सब बातों को ध्यान में रखकर महामना जी विश्वविद्यालय शिक्षा का माध्यम मातृभाषा रखना चाहते थे किन्तु इस विषय पर महामना का सरकार से पर्याप्त विरोध हुआ। अन्ततः महामना जी कुछ अंशों तक अग्रेंजी भाषा के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने को सहमत हो गये। किन्तु उन्होंने सुझाव दिया कि हिन्दी भाषा की पुस्तकों का विकास किया जाये तथा जो पुस्तके अन्य भाषाओं में उपलब्ध है उनका यथाशीध्र हिन्दी में अनुवादकिया जाय। मातृभाषा हिन्दी के विकास के लिए महामना ने अनेक समितियों एव संख्याओं का निर्माण किया।

महामना का विचार था कि समय के अनुरूप ही धीरे–धीरे सम्पूर्ण साहित्य, हिन्दी भाशा के माध्यम से प्रकाशित होगा और शिक्षा का माध्यम, मातृभाषा हो जावेगा, किन्तु यह हमारा दुर्भाग्य रहा कि महामना का यह स्वप्न सही अर्थो में अभी तक पूरा न हो सका, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण आज भी यत्र–तत्र परिलक्षित होता है। जैसे अग्रेंजी माध्यम के स्कूलों के रूप में।

(2) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय–

रचनात्मक कार्यो के सिलसिले में महामना जी का सबसे बड़ा काम काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय महामना जी की प्रगतिशील विचार धारा का धोतक है। महामना ने अपनी सेवाए ही नहीं अपितु अपना सम्पूर्ण जीवन राष्ट्र की प्रगति एंव विकास के लिए अर्पित कर दिया।

इस विश्वविद्यालय के निर्माण योजना के सम्बन्ध में इसका मानचित्र देकर ही महामना के स्वप्नों की पूर्ण अभिव्यक्ति हो पाती है। धर्म, दर्शन, कला ,उधोग

औधौगिक विज्ञान एवं तकनीकी के रूप में महामना की साकार अध्ययन–अध्यापन की परिकल्पना परिलक्षित होती है छात्रावास ,कर्मचारी–आवास तथा शिक्षक–आवास के साथ ही विश्वविद्यालय ,महिला संकाय, संस्कृत,कला, विाान ,चिकित्सा विज्ञान तथा तकनीकी संस्थान के अनुरूप निर्माण योजना बनाई। विद्यार्थियों की बढ़ती संख्या के साथ ही हिन्दू विश्वविद्यालय का विस्तार होता जावे यह सोचकर ही ऐसी योजना महामना ने बनाई जो उनकी मृत्यु के बाद आज भी योजनानुरूप कियान्वित है विश्वविद्यालय का निर्माण उसी योजना के अनुरूप आज भी हो रहा है। यह महामना की आलौकित एवं गूढ़तर सूझ–बूझ का परिचायक है।

अर्द्धचन्द्रकार रूप से स्थिति इस विश्वविद्यालय के केन्द्र से सभी संकाय एवं संस्थान न्यूनतम दूरी पर स्थित है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का विशाल भवन भारतीय आस्तुकला एवं भारतीय भवन निर्माण कला का स्वंय में एक अनुपम उदाहरण है यह विश्वविद्यालय अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिलब्ध शिक्षा संस्थान है।

(क) भौतिक विकास–

''फूट डालो राज्य करो '' इस नीति के समर्थक अग्रेंज भारतवासियों को पनपने नहीं देना चाहते थे वे भारत का भौतिक विकास अवरूद्ध कर देना चाहते थे ताकि भारतीयों मे चेतना का प्रस्फुरण कभी हो ही न सके। किन्तु भारत भूमि महामनाओं की भूमि है जहां मदन मोहन जेसे सपूत अवतरित होते है। महामना ने अग्रेंजी की इस धातक नीति को समझकर उसे नष्ट करने का प्रयास किया। महामना ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण ''काशी हिन्दू विश्वविद्यालय है । भौतिक उपलब्धियां अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्राप्त है। यहां का पाठ्यक्रम, शिक्षा प्रणाली, शिक्षण विधि सभी स्वंय में भौतिक विकास के परिचायक है।

(ख) चरित्र निर्माण पर बल–

महामना भारतवासियों के चरित्र को राष्ट्र का चरित्रत मानते थे। फरवरी सन् 1942 में महामना ने विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को आमंत्रित किया। इस पुनीत अवसर पर दिये गये व्याख्यान में महात्मागांधी ने चरित्र की महात्ता पर विशेष बल दिया।

(ग) अनेकता में एकता के पोषक–

महामना जी समय की आकांक्षा को भली प्रकार आत्मसात कर चुके थे अग्रेंजों के द्वारा डाली गयी फूट को एकता के बल से ही पराजित किया । महामना द्वारा आयोजित सम्मेलनों में हिन्दू मुस्लिम, सिक्ख,ईसाई सभी जाति और धर्म के लोग समान रूप से भाग लेते थे महामना ने फाल्गुन त्रयोदशी सम्वत् 1963 विक्रमी मे अपने एक भाषण में कहा कि....................

" हिन्दुस्तान में अब केवल हिन्दू ही नहीं वास्ते– हिन्दूस्तान अब केवल उन्हीं का देश नहीं है। हिन्दुस्तान जैसा हिन्दुओं का प्यारा देश है वैसा मुसलमानों का भी है ये दोनो जातियां अब यहां बसती है और सदा बसती रहेगी। जितनी इन दोनो में एकता रहेगी उतना ही देश उन्नति की सीमा को स्पर्श करेगा। पारस्परिक विरोध में हम दबुले बने रहेगें। दोनो में से किसी का भी विकास सम्भव न होगा। (1)

(घ) महामना जी का श्रम साधना–

काशी विश्वविद्यालय उनकी श्रम साधना का आख्या केन्द्र था। जीवन के अधिकांश भाग को इस महायज्ञ में आहूति देने पर भी अभी उनकी श्रम साधना

---

(1) चतुर्वेदी सीताराम– आधुनिक भारत के निर्माता पृष्ठ–97

कलांत शान्त नहीं हुई थी। श्रम पथ का वह वीर पथिक अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में भी अपनी श्रम साधना से पूर्ण सन्तुष्ट नहीं था।

राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लेने के कारण सरकारी सहायता बंद हो जाने से महामना ने विश्वविद्यालयों की विकासोनमुख योजनाएं बन्द नहीं होने दी। संकट के समय महामना असाध्य श्रम करके भी विपत्ति का सामना किया करते थे। चन्दे के लिए भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक का भ्रमण करते न थकते थे। इस परिश्रम का परिणाम है कि आज महामना द्वारा स्थापित विश्वविद्यालय अखण्ड ज्योति के समान गणमान्य विश्वविद्यालयों में से एक है और अपने प्रकाश से भारत को ही नहीं सम्पूर्ण विश्व को अलौकिक कर रहा है।

(3) राजनीतिक कार्य–

राजनीति में महामना के सद्व्यवहार की अपूर्ण शक्ति थी। वे परम दल के नेता थे। काग्रेंस का अधिवेशन अमृतसर में होना था इसके लिए अध्यक्ष महान राजनीतिज्ञ लोकमान्य तिलक का बनाना तय था। बहुमत के पख में होते हुए भी तिलक जी इस पद के इच्छुक नहीं थे, महामना जी ने ऐसे अवसर पर समझौताशदी दृष्टिकोण अपनाया तथा सदस्यों को समझाकर मोतीलाल नेहरू को अध्यक्ष बनाया और काग्रेंस के आन्तिरिक विवाद को समाप्त करवाया। उनका यह कार्य उनकी अद्भुत राजनीतिक प्रतिमा को परिलक्षित करता है।

महामना जी अपने जीवन के अन्तिम दिनो तक देश और काग्रेंस की सेवा करते रहे। उनकी वृद्धावस्था को देखते हुए महामा गांधी उनसे मिलने के लिए आए और महामना से अनुरोध किया कि " आप देश की चिन्ता कब छोड़ेगें, बहुत वृद्ध हो गये है............ आप मेरे ऊपर जो भी भार छोड़ना चाहते है, छोड़ दें, पर आप सब

चिन्ता छोड़ दे और अपनी शक्ति मुझे दे दें।" [1]

(4) अन्तिम काल–

दिसम्बर सन् 1937 में काग्रेंस के फैजपुर अधिवेशन में महामन ने कहा..........
" हम अग्रेंजी राज्य सहन नहीं कर सकते। हम अपना शासन अपने आप कर सकते है शासन करने की हमारी वह शन्ति क्षीण नहीं हो गयी है जो हमारे पूर्वजों में थी। संसार में सभी देशों ने यहां तक की मिश्र ने भी स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है। क्या कोई भारतीय ऐसा है जिसका ह्दय भारत की दुर्दशा देखकर बार–बार न रोता है। सामर्थ्य और बुद्धि रखते हुए भी हम लोग अग्रेजों के गुलाम है क्या हमें लज्जा नहीं आती? हम ब्रिटेंन से मिलना चहते है। यदि ब्रिटेन हमारी मित्रता चाहता है तो हम तैयार है किन्तु यदि वह हमें अपने अधीन रखना चाहता है तो हम उसकी मित्रता नहीं चाहते। आप स्मरण रखे, कि अग्रेंज जब तक आपसे डरेगें नहीं, तब तक यहां से नही भागेगें। अपनी कायरता को दूर भगा दो, बहादुर बनो और प्रतिज्ञा करो कि आजाद होकर ही हम दम लेगें। [2] इस अवसर पर उन्होंने यह भी कहा कि मैं पचास वर्ष से काग्रेंस के साथ हूँ, सम्भस है कि मैं बहुत समय तक न जिऊँ और अपने जी में यह कलंक मरू, कि भारत अभी भी पराधीन है, फिर भी मैं यह आशा करता हूँ कि इस भारत वर्ष को स्वतंत्र देख सकूँगा।

सनृ 1937 में चुनावों के पश्चात महामना ने काग्रेंसी विधायकों की सभा में सलाह दी कि चुनावों में की गयी प्रतिज्ञा तथा नई व्यवस्था की कमियों का ध्यान मे रखकर उन्हें मंत्रिमण्डल बनाकर शासन का उत्तरदायित्व ग्रहण नहीं करना चाहिए।

---

(1) मालवीय पदमृकान्त– मालवीय जी– जीवन झलकियां पृष्ठ–30
(2) मुकुट बिहारी लाल– महामना मदन मोहन मालवीय–जीवन और नेतृत्व पृष्ठ 549

उनकी इस सलाह को राजनैतिक नेताओं ने अवहेलना की, जिससे दुखी होकर अपनी आयु के छिहत्तरवें वर्ष में अखिल भारतीय काग्रेंस कमेटी की बैठक में नवयुवक काग्रेंसी कार्यकताओं को आर्शीवाद देते हुए सक्रिय राजनीति से सन्यास ले लिया, किन्तु विश्वविद्यालय के प्रबन्ध दायित्व फिर भी बना रहा।

16 जनवरी सन् 1938 को महामना ने तपसी बाबा की देखरेख में राम बाग (शिवकोरिट प्रयाग) में कायाकल्प का प्रयोग प्रारम्भ किया। इससे बुढ़ापे के कुछ लक्षण तो कम हुए, किन्तु शरीर काफी शिथिल हो गया और कायाकल्प का प्रयोग विफल सिद्ध हुआ।

चाहे जो हो कायाकल्प के बाद भारी उत्तरदायित्व का वहन करना उनके लिए असम्भव था। अतः काशी विश्वविद्यालय के प्रबन्ध का भार किसी दूसरे को सौपना अनिवार्य हो गया था अतः महामना ने इस उत्तरदायित्व के भार को सर्वपल्ली डा0राधाकृष्णन के कन्धों पर डाला, जिसे वहन करने के लिए वे तैयार हो गये। प्रबन्ध के कार्य से मुक्त हो जाने के बाद भी विश्वविद्यालय से उनका समबन्ध बना रहा, उसके अभ्युदय की चिन्ता भी उन्हें बनी रही। वे अपने निवास स्थान से ही विश्वविद्यालय हेतु शुभकामना करते थे तथा परामर्श दिया करते थे। सक्रिय राजनीति तथा विश्वविद्यालय प्रबन्ध से अवकाश लेने के बाद भी महामना का सनातन धर्म सभा से पुराना सम्बन्ध बना रहा।

8 अगस्त सन् 1940 को द्वितीय विश्वयुद्ध के काल में विश्वशन्ति के निमित्त उन्होंने '' महारूद्धयाग'' का अनुष्ठान किया। यह 10 दिन तक चलता रहा। अस्वस्था के कारण उन्हें यज्ञशाला तक जाकर लम्बे समय तक बैठने में कष्ट होता था, किन्तु उन्होंने इसकी चिन्ता कभी नहीं की और निरन्तर 'यज्ञशाला जाते रहे। अन्तिम

दिन अर्थात 17 अगस्त सन् 1940 को उन्होने यज्ञ देवता से प्रार्थना की कि –

1. " संसार में शान्ति न्याय और धर्म का राज्य स्थापित हो।

2. भारत को स्वराज्य प्राप्त हो और

3. हिन्दुओं को हिन्दूस्तान में उचित गौरव और सम्मान से रहने की स्वतंत्रता प्राप्त हो। " [1]

अवकाश ग्रहण करने के बाद भी महामना दिन भर जनता से घिरे रहते थे यद्यपि इससे उन्हें कृष्ट होता था। किन्तु वे किसी को निराश वापस नहीं भेजते थे। दिन में भोजन के बाद थोड विश्राम करने के बाद उनका सारा समय देश और धर्म की चर्चा और भरसक दूसरों की सहायता में बीतता। उसके बाद शाम को भोजन होता, फिर वही देश के भविष्य की चिन्ता हिन्दु संगठन और धर्म प्रचार की उत्कंठा आ घेरती। इस प्रकार दस बजे के लगभग यह वृद्ध तपस्वी अपनी आकांक्षाओं की ओढ़नी में लिपटा हुआ निद्रामग्न हो जाता है। स्वंय कष्ट सहकर दूसरों के कष्ट दूर करना .... यही तो महामना का जीवन था। इसी से तो वे अपने जीवन की सार्थकता अनुभव करते थे।

अपने जीवन के अन्तिम वर्षो में महामना की बहुत से पारिवारिक शोक सहन करने पड़े। सन् 1940 में महामना की धर्मपत्नी का सन् 1941 में उनके सबसे बड़े भतीजे पण्डित कृष्णकान्त मालवीय का 18 फरवरी 1943 को उनके सबसे बड़े पुत्र पण्डित रमाकान्त मालवीय का तथा उनकी विधवा बहन का निधन हुआ। इसी वर्ष जनवरी में उनके पुराने मित्र बल्देवराय दुबे का तथा फरवरी में विश्वविद्यालय के चान्स्लर महाराजा गंगासिंह का निर्धन हुआ। इस सबका उनके कोमल हृदय पर

मुकुट बिहारी लाल– महामना मदनमोहन मालवीय– जीवन और नेतृत्व पृष्ठ 552

अवश्य ही कष्ट दायक प्रभाव पड़ा। इन सब घटनाओं में ज्येष्ठ पुत्र रमाकान्त जी का निधन सबसे अधिक कष्ट दायक था।

सन् 1942 में देश व्यापी संघर्ष अर्थात हिन्दु-मुस्लिम संघर्ष से महामना को काफी दुख हुआ तथा मन में क्रोध की ज्वाला धधक उठी। उन्होंने चार पॉच दिन परिश्रम करके एक वक्तव्य तैयार कराया। इस वक्तव्य में उन्होंने लिखा कि "धर्म परिवर्तन बन्द होना चाहिए। जो जबरजस्ती मुसलमान बनाए गये है और फिर हिन्दू बनना चाहते है उन्हें फिर से हिन्दू समाज में प्रवेश करने की सुविधा मिलनी चाहिए। हिन्दुओं की आत्म रक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए। स्वंय जीवित रहना और दूसरों को जीवित रखना उसका उद्देश्य हो।.................................." (1) वे चाहते थे कि आत्मसम्मान और आत्मरक्षा के लिए हिन्दू स्वंय सेवकों की संस्थाए संगठित की जाएं। हिन्दू हिन्दुओं की रक्षा करे और मुसलमानों क अत्याचारों का दृढ़ता से मुकाबला करें। महामना के इस वक्तव्य की भाषा बहुत कडी और कड़वी थी इससे महामना के धैर्य और सतुलन की कभी परिलक्षित होती है।

वक्तव्य के तीन चार दिन बाद गोवाष्टमी को संध्या समय के 7–8 मील दूर शिवपुर गौशाला के उत्सव में गये। उत्सव में उनहोंने गौरक्षा पर छोटा सा भाषण किया। लौटते समय ढंड लगा जाने से उन्हें ज्वर हो गया। कि उपचार के बाद भी उनकी दशा बिगड़ती ही गयी, किन्तु अन्तिम समय तक उन्होंने चेतना नहीं खोई। ज्वर का प्रकोप निरन्तर बढ़ता ही गया। बिगड़ती स्थिति को देखते हुए परिवार जनों से सभी अन्तिम क्रियाएं सम्पादित की और अन्त में गोबर से लिपी भूमि पर स्वाभाविक शान्त मुद्रा में 12 नवमबर सन् 1946 को लगभग 85 वर्ष की आयु प्राप्त कर प्राण छोड़ गये।

मालवीय जी के निधन से विश्वविद्यालय परिसर के साथ ही साथ पूरे वाराणसी में शोक व्याप्त हो गया। शव यात्रा में सभी वर्गो और सम्प्रदायों के लोग सम्मिलित हुए तथा ममिकर्णिका घाट पर उनका सम्मान के साथ दाह संस्कार हुआ। उनके निधन पर देश के सभी वर्गो के लोगों, राजनैतिक नेताओं ने शोक संवेदना संदेश भेजे। इस प्रकार एक निर्भीक ,सत्य निष्ठ ज्योति सदा के लिए परमब्रहम में विलीन हो गयी।

अध्याय चतुर्थ

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जी के मौलिक दार्शनिक व शैक्षिक विचार

भारतीय संस्कृति के आधुनिक प्रवक्ता पंडित दीनदयाल उपाध्याय के सम्बन्ध में ''यथानाम तथा गुण'' की उक्ति चरितार्थ होती है। दीनदयाल अर्थात दीनों पर दया करने वाले। पण्डित दीन दयाल स्वंय जन्मतः अनिकेत थे। गरीबी की पीड़ा स्वंय उन्होंने सहन की थी उनका पूरा परिवार आर्थिक विपन्नता के कारण ही नष्ट हुआ था। अतः गरीबी, निराक्षतो, दरिद्रों के प्रति उनका स्वाभाविक लगाव था उनका मानना था कि '' दरिन्द्र नारायण '' ही हमारे अराध्य देव है। दीनदयाल जी का मानना था कि '' आर्थिक प्रकति का माप समाज में ऊपर की सीढ़ी पर पहुँचे हुए व्यक्ति से नहीं अपितु सबसे नीचे स्तर पर जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति से होनी चाहिए। [1]

उनका कहना था मैले कुचैले अनपढ़ लोग हमारे नारायण है हमें इनकी पूजा करनी है। यह हमारा सामाजिक एवं मानवीय धर्म है। जिस दिन हम इनको पकके सुन्दर सम्पन्न घर बनाकर देगें, जिस दिन हम इनके बच्चों, स्त्रियों को शिक्षा और जीवन दर्शन का ज्ञान देगें,जिस दिन हम इनकी हाथ और पॉवों की विवाइयों को भरेगें और जिस दिन इनको उधोग और धन्धों की शिक्षा देकर इनकी आय को ऊँचा उठा देगें। उसी दिन हमारा मातृत्व भाव व्यक्त होगा। [2]

---

(1) जनसंघ कालीकट अधिवेशन अध्यक्षीय भाषण पंडित दीनदयाल उपाध्याय
(2) जनसंघ कालीकट अधिवेशन अध्यक्षीय भाषण पंडित दीनदयाल उपाध्याय

उपरोक्त विचारों से यह ज्ञान होता है कि गरीबों, निर्धनों और असहाय व्यक्तियों क लिए ह्दय में अपार ऋृद्धा थी। अत्यन्त ममत्व था और उनको ऊपर उठाने की तीव्र उतकण्डा थी। अतः निर्विवाद रूप से यह कहा जाता है कि पण्डित जी अन्त्योदय के प्रबल पक्षधर थे। पण्डित दीनदयाल जी की आर्थिक परिकल्पना का आधार करोड़ो भूखे नंगे इंसान हे। भारतीय संस्कृति में पूर्ण मनुष्य की परिकल्पना इन्ही में निहित है। पंडित जी का यह मौलिक विचार है इसके लिए भारतीय दर्शन की समग्रता में मनुष्य ,समाज और सत्ता के मूल तत्वों का आधुनिक रूप में विश्लेषण कर उपाध्याय जी ने नई दिशा का संकेत किया। वे अपने आग्रह के बारे में बार–बार संकेत किया करते थे। " कि जिनके सामने रोटी का सवाल है जिन्हें न रहने का मकान है न तन ढ़कने के लिए कपड़ा। अपने मैले कुचैल कपड़े पहने बच्चों के बीच आज वे दम तोड़ रहे है। गॉवों और शहरों में करोड़ो निराश भाई वहिनों को सुखी और सम्पन्न बनाना हमारा वृत है। संकल्प है। [(1)]

जब पण्डित जी जनसंघ में नहीं आये थे राष्ट्ीय स्वंय सेवक संघ के उत्तर प्रदेश के प्रचारक थे उस समय संघ पर पूंजीवादी होने का आरोप कई राजनीतिज्ञों एवं राजनीतिक दलों ने लगाया था इसका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था " संघ पूंजीपति एवं जमीदारों को बनाएं रखना चाहता है इस प्रकार से सोचना निरी मूर्खता है। क्या केवल मुट्ठी भर जमीदारों को बनाएं रखने के लिए लाखों सुशिक्षित नौजवान रात दिन सर्वस्व त्याग कर कार्य करेंगें। [(2)]

---

(1) जनसंघ कालीकट अधिवेंशन, अध्यक्षीय भाषण पंडित दीनदयाल उपाध्याय

(2) मुट्ठो भर जमीदारों के लिए लाखों तरूण समस्या नहीं कर रहे।
कुसुम्बी 14 नवम्बर सह प्रान्त प्रचारक (उ0प्र0दीनदयाल उपाध्याय का भाषण)
पांचजन्य नवम्बर 1994

सन् 1955 में कानपुर के सूती मिल मजदूरों ने मशीनरीकरण के विरूद्ध हड़ताल की, इस हड़ताल का समर्थन करते हुए उपाध्याय ने पूंजीवाद व अभिनवीकरण के सम्बन्ध में व्याख्या करते हुए कहा– " अभिनवीकरण का प्रश्न कठिन है तथा केवल मजदूरों तक सीमित नहीं है अपितु अखिल भारतीय है। वास्तव में तो बड़े उधोगों की स्थापना एवं पूँजीवाद अर्थ व्यवस्था का आधार ही अभिनवीकरण है। आज का विज्ञान निरन्तर प्रयास कर रहा है ऐसे यंत्रों के निर्माण करने का जिनके द्वारा मनुष्यों का कम से कम उपयोग हो। जहां जनसंख्या कम है तथा उत्पादन के लिए पर्याप्त बाजार है कहा में नये यंत्र वरदान सिद्ध होते है। हम यहां हर एक नया यंत्र बेकारी लेकर आता है।" (1)

देश में उत्पन्न बेरोजगारी और बेरोजगारी से उत्पन्न दरिन्द्रता के बारे में पंण्डित दीनदयाल जी अत्यन्त चिन्तित थे। वे मशीनीकरण के विरूद्ध न होते हुए भी श्रम के बेकार होने के विल्कुल खिलाफ थे। उनका कहना था कि सदियों से शिक्षा तथा संस्कारों में पिछड़े और दरिद्रता से पीड़ित लोगों को अपनी प्रगति के लिए विशेष सुविधाएं उपलब्ध करा देनी चाहिए वह इस बात से भी सावधान रहने का संकेत करते थे कि कोई पिछड़ेपन का गलत फायदा भी न उठा सके। शासन के नियमों को भी ऐसा बनाया जाना चाहिए जिससे सबसे नीचे बैठे आदमी को ऊँचा उठाया जा सके। पण्डित जी कहते थे कि देश के अनपढ़ और दरिद्र लोग ही हमारे नारायण है यही सामाजिक या मानवधर्म है करोड़ो लोगों बेसहारा और अनपढ़ है।...... इन करोड़ों लोगों को अपने चारो पुरूषार्थो को साधने का अवसर मिले तभी एकात्म मानव की कल्पना सकार होगी।" (2)

---

(1)विचार बीथी–कानपुर सूती मिल मजदूरों की हड़ताल पांचजन्य 11जुलाई1955 पृष्ठ–4
(2) भारतीय जनसंघ– घोषणाये भाग–3

कालीकट के अधिवेशन में पण्डित जी का अध्यक्षीय भाषण उनकी अन्तयोदय की भावना तथा दरिद्रो के प्रति उनके सहज चिन्तः को अक्षरश; व्यक्त करने वाला है। "ग्रामों मे जहां समय अचल खड़ा है जहां माता–पिता अपने बच्चों के भविष्य को बनाने में असमर्थ है, उनके बीच जब तक हम आशा और पुरूषार्थ का संदेश नहीं पहॅुचा पायेगें तब तक हम राष्ट्र के चैतन्य को जागृत नहीं कर सकेंगें। हमारी श्रद्धा का केन्द्र आराध्य और उपास्य, हमारे पराक्रम और प्रयत्न का उपकरण तथा उपलब्धियों का मापदण्ड वह मानव होगा जो आज शब्दशः अनिकेत और अपरिग्रही है।" (1)

पंडित दीन दयाल जी की विचार धारा किसी एक दर्शन के खूटे से नहीं बंधी है। अनेकों दार्शनिकों एवं विचारधाराओं ने पण्डित जी को प्रभावित किया था। मुख्यतः वे सनातन धम्र तथा आदर्शवादी विचारक एवं भारतीय संस्कृति के प्रवक्ता थे पंडित जी रूढ़िवादी विचारों के विरूद्ध तथा भारतीय जीवन दर्शन और पाश्चात्य आधुनिक दर्शन में मेल के हिमायती थे।

पण्डित दीन दयाल जी देशिक शास्त्र के प्रबल पक्षधर थे। अतः उन्होंने अपनी अवधारणाओं को प्रतिपादित करने वाली तकनीकी शब्दावली को आग्रह एवं प्रयास पूर्वक प्राचीन भारतीय वाडमय से ही चुना। भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात देश में व्यापक वैचारिक परावलम्बिता की पीड़ा से उनका चिन्तन प्रस्फुटित हुआ और राष्ट्रीय स्वंय संघ की राष्ट्रवादी विचारधारा में एक रस छा गया देश के पुरूषार्थ को सचेत करते हुए उन्होंने जो विचार प्रतिपादित किये वे उनके राष्ट्रीय स्वाभिमान को प्रदर्शित करते है।

---

(1) कालीकट अधिवेशन अध्यक्षीय भाषण– पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी

महाचिन्तक, कर्मयोगी,मनीषी एवं राष्ट्रवादी विचारक पंडित दीनदयाल उपाध्याय का भारत के सामाजिक क्षितिज पर उदय एक महत्वपूर्ण घटना थी उन्होंने प्राचीन भारतीय जीवन दर्शन के आधार पर सामायिक व्यवस्थाओं के सम्बन्ध में मौलिक चिन्तन करके दर्शनिक दृष्टिकोण से परिपूर्ण व्यवहारिक व्याख्याएं दी। अपने आर्थिक सामाजिक तथा राजनीतिक विचारों द्वारा पंण्डित दीन दयाल ने जनसाधारण को ही नहीं बल्कि राजनेताओं तथा विचारकों को भी समान रूप से प्रभावित किया। पंण्डित जी का लक्ष्य राष्ट् को राजनीतिक दृष्टि से सुदृढ़, सामाजिक दृष्टि से उन्न तथा आर्थिक दृष्टि से समृद्ध करना था। उनका मानना था कि राष्ट्र का सर्वतोनमुखी विकास समाज कल्याण के द्वारा ही सम्भव है। अतः उन्होंने समाज कल्याण के लिए शिक्षा को सबसे उचित माध्यम के रूप में स्वीकार किया। समाज के महत्वपूर्ण अंग परिवार को सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत करने के लिए नारी शिक्षा को अत्यावश्यक माना। इस प्रकार शिक्षा को उन्होंने ग्रामोन्मुखी पिछड़े क्रमजोर वर्ग की उत्थानकारी शारीरिक परिश्रम से युक्त चरित्र एवं नैतिकता से जुड़ी हुइ समाज के लिए हितकारी के रूप में स्वीकार किया। कोरी किताबी शिक्षा तथा ज्ञान को उन्होंने वास्तविक शिक्षा नहीं माना। उनका सर्वथा सुस्पष्ट अभिमत था कि शिक्षा का समूचा ढॉचा उसकी प्रक्रिया तथा विकास भारतीयता तथा राष्ट्रोपासना पर आधारित होना चाहिए। इसलिए उन्होंनें शिक्षा के क्षेत्र मे अमूल परिवर्तन की परिकल्पना की है। समाज परिवर्तन की विकासवादी प्रक्रिया को गति देने में शिक्षा को उन्होंने निर्णायक माना है तथा औपचारिक शालेय शिक्षा और अनोपचारिक संस्कार व्यवस्था के माध्यम से समाज के सब पुरुषार्थो को प्राप्त करने की ,कामना की है। उनके इन्ही विचारों को जन—जन तक पहॅुचाना ही शोधकर्ता का लक्ष्य एवं कर्तव्य है।

(अ) <u>उपाध्याय जी के शिक्षा के उद्देश्य</u>– जॉन डीवी ने कहा है कि–

"शिक्षा के अपने कोई उद्देश्य नहीं होते है फिर भी व्यक्ति या समाज की आवश्यकताओं को ध्यान मे रखकर उनका निर्माण किया जाता है वे या तो लोगों की उन्नति के लिए या समाज के आदर्शो की प्राप्ति के लिए या इन दोनो के लिए निश्चित किये जाते है।" [1]

इस प्रकार शिक्षा के उद्देश्यों के विभिन्न प्रयोजन होते है और इन्ही प्रयोजनों के आधार पर उनका निर्माण किया जाता है। इसीलिए उनके स्वरूप में भी भिन्नता रहती है। प्रत्मुख विद्धानों द्वारा मुख्यतः शिक्षा के चार उद्देश्य निरूपित किये गये है।

1. सार्वभौमिक उद्देश्य
2. विशिष्ट उद्देश्य
3. वैयक्तिक उद्देश्य
4. सामाजिक उद्देश्य

प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री टी0पी0नन ने लिखा है–

" शिक्षा की प्रत्येक योजना अन्तोगत्वा व्यवहारिक दर्शन है और जीवन के प्रत्येक बिन्दु को आवश्यक रूप से स्पर्श करती है अतः शिक्षा के कोई भी उद्देश्य जो निश्चित रूप से पथ प्रदर्शन करने के लिए पर्याप्त रूप से स्थूल है जीवन के आदेर्शो से सम्बन्ध रखते है और चूंकि जीवन के आदर्श सर्वथा भिन्न हुआ करते है इसलिए उनकी भिन्नता शैक्षक सिद्धान्तों में अवश्य प्रतिविम्बत होगी।" [2]

---

(1) शिक्षा के उद्देश्यों का निर्माण और वर्गीकरण " पृष्ठ–37
शिक्षा के दार्शनिक सिद्धान्त पाठक एवं त्यागी, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा
(2) दर्शन और शिक्षा पृष्ठ–115

हम देख चुके है कि जीवन के प्रति दृष्टिकोण का नाम दर्शन है। व्यक्ति इसी दृष्टिकोण के अनुसार अपना जीवन ज्ञापन करता है अतः जीवन और दर्शन अभिन्न है। जीवन के दृष्टिकोण के अनुसार ही शिक्षा के उद्देश्यों का निर्मिाण किया जाता है। अतः जिसका जिस प्रकार का जीवन के प्रति दृष्टिकोण होगा उसके द्वारा निर्धारित किये गये शैक्षिक उद्देश्य भी उसी प्रकार के होगें। यदि कोई विद्वान भौतिक वादी विचारों वाला है तो वह शिक्षा के ऐसे उद्देश्य निर्धारित करेगा जिससे कि भौतिक सामग्री एकत्र करने की कला का ज्ञान हो सके, और यदि अध्यात्मिक दृष्टिकोण रखने वाला व्यक्ति को शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण करना पड़े तो वह आत्मानुभूति की शिक्षा का उद्देश्य निर्धारित करेगा। जिससे " परमसत्ता" से एकाकार करने को सामर्थ्य हो सके। पण्डित दीनदयाल उपाध्याय ने शिक्षा के जो उद्देश्य निर्धारित किये है उनमें उनके दर्शन की स्पष्ट झलक मिलती है। पण्डित जी राष्ट्र की सेवा के लिए आजीवन वृत करने वाले अप्रतिम कर्मयोगी थे। उनके जैसा व्यक्ति अपने राष्ट्र को परतंत्र कैसे देख सकता है? अतः उन्होने शिक्षा के जो उद्देश्य निर्धारित किये है उनमें "स्वराज्य प्राप्ति " उनका प्रथम उद्देश्य है।

(i) <u>स्वराज्य प्राति</u>– " सन् 1942 मे स्वतंत्रता अन्दोलन अपनी चरम सीमा पर था पण्डित दीनदयाल जी महान क्रान्तिकारी बाल गंगाधर तिलक से काफी प्रभावित थे। अतःस्वाभाविक है वह भी मातृभूमि की दासता को नहीं देख सकते थे। लेकिन देश पराधीन क्यों हुआ। इसके बारे में उनका स्पष्ट सोच था कि भारत के निवासी आपस में असंगठित है जिससे उन्हें परतत्रंता की यातनाएं सहन करनी पड़ी यह पीड़ा उन्होंने निरन्तर कचोटती रहती थी। पण्डित जी मातृभूमि को दासता के बन्धनों से मुक्त कराना चाहते थे उन्होने अपने मामा को जो पत्र लिखा उसमें स्वराज्य प्राप्ति हेतु उनकी लालसा स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

" हमारा समाज संगठित नहीं दुर्बल है। इसीलिए हमारी आरती और बाजों पर लड़ाईयां होती है, इसलिए हमारी मॉ वहिनों को मुसलमान भगाकर ले जाते है। अग्रेंज सिपाही उन पर निःशंक होकर अत्याचार करते है और हम बड़ी भारी इज्जत का दम भारने वाले समाज में ऊँची नाक रखने वाले, फूंटी ऑखों से देखते रहते है हम उसका प्रतिकार नहीं कर सकते............... क्यों? क्या हिन्दुओं में ऐसे ताकतवर आदमियों की कमी है जो इस दुस्टों का मुकाबला कर सके?............... हमारे पतन का कारण हममें संगठन की कमी है। बाकी बुराईयां अशिक्षा आदि तो पतित अवस्था के लक्षण मात्र है............ रही बात नाम और यश की सा तो आप जानते है है कि गुलामों का कैसा नाम और कैसा यश?" [1]

पण्डित दीनदयाल जी चाहते थे कि समाज को ऐसी शिक्षा दी जाये जिससे उनके अन्दर संगठन और त्याग की भावना जागृत हो सके और राष्ट्र को परतंत्रता के बन्धनों से मुक्त कराया जा सके–

" जिस समाज और धर्म की रक्षा के लिए राम ने वनवास सहा। कृष्ण ने अनेकों कष्ट उठाये, राणाप्रताप जंगल जंगल मारे फिरे, शिवा जी ने सर्वस्व अर्पण कर दिया, गुरू गोविन्द सिंह के छोटे–छोटे बच्चे जीते जी किले की दीवारों मे चुन गये, क्या उसकी खारित हम अपनी जीवन की आकांक्षाओं का झूठी आकांक्षाओं का त्याग भी नहीं कर सकते?"

पिछले बारह सौ वर्षो के गुलामी के इतिहास से पण्डित जी पूरी तरह परिचित थे। वे जानते थे कि " समाज में जब तक अपने "स्वत्व" का अभिमान जागृत रहा,

---

(1) उपाध्याय जी का एक पत्र– पण्डित दीनदयाल उपाध्याय व्यक्ति दर्शन पृष्ठ 154–155

उसके कारण भूमि धर्म संस्कृति तथा राष्ट्र की एकात्मकता का भावना विद्यमान रही, तब तक इस समाज की ओर ऑख उठाकर देखने का भी साहस किसी को नहीं हुआ। परन्तु एकात्म जीवन का विस्मरण होते ही छोटे बड़े अनेक स्वार्थ घुस आये। सत्ता लोग से राज्य आपस मे टकराने लगे, इससे निवलेता आई और गुलामी सहित अनेक प्रकार की दुर्दशा इस समाज को भांगनी पड़ी । यदि सब प्रकार की दूर्दशा को दूर हटाना है तो संगठित और उत्तम समाज जीवन खड़ा करना पडेगा।............ समाज के साथ एकात्मक भावन स्थापित करके स्वत्व बांध का जागरण किया तो सामर्थ्ययुक्त समाज अपने ही बल बूते पर सब वैभव और यश प्राप्त कर लेगा।" [1]

उपरोक्त एतिहासिक तथ्य से पूर्णतया भिज्ञ पण्डित दीनदयाल जी समाज को ऐसी शिक्षा देना चाहते थे कि सम्पूर्ण समाज एकता के सूत्र में बंध जाये और स्वराज्य प्राप्ति हेतु संघर्ष के लिए तैयार हो सके।

स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रति तटस्थता बनाएं रखने वाले लोगों को फटकारते हुए उन्होंने सबकों स्वतंत्र समर मे सहभागी होने के लिए प्रेरित किया।

" सम्पत्ति में देश का साथ न देने वाला क्षमा किया जा सकता है परन्तु विपत्ति में शत्रु के साथ मिलकर देश द्रोह करने वाला तो दूर रहा, देश को साथ न देकर चुप बैठने वाला भी क्षमा नहीं किया जा सकता।" [2]

पण्डित जी द्वारा लिखित उपन्यास चन्द्रगुप्त–सशक्त भारत में उल्लेख किया है कि चाणक्य द्वारा एकता के सूत्र में बांधी गयी संगठित शक्ति से सिकन्दर की

---

(1) इतिहास बांध–राष्ट्र भा0स0गोवलकर सम्पादक भानुप्रताप शुक्ला
पृष्ठ–234" जानकी प्रकाशन नई दिल्ली।

(2) सशक्त भारत पं0दीनदयाल उपाध्याय पृष्ठ–62

पराजय होती है चन्द्रगुप्त भारत का एक छत्र सम्राट बनता है राष्ट्र समस्त वैभव से परिपूर्ण होता है।

" आज सम्पूर्ण भारत एक आवाज से बोलता है और एक इशारे पर काम करता है इस एकता में कितनी शक्ति है। पण्डित जी की भी ऐसी ही आकांक्षा थी ऐसा ही था उनका भी उद्देश्य।" [1]

(ii) <u>चारित्रिक विकास–</u> पाश्चात्य संस्कृति में सच्चरित्रतता का समर्थन करते हुए कहा गया है कि शिक्षा के द्वारा मनुष्यों का चरित्र निर्माण किया जाना चाहिए प्लेटो ने कहा है कि–

"शिक्षा से मेरा अभिप्राय उस प्रशिक्षण से है जो अच्छी आदतों के द्वारा बच्चों में अच्छी नैतिकता का विकास करती है।" [2]

" वृतं यत्नेत संरक्षेत वित्तमायाति याति च,

अक्षीणों वित्ततः क्षीणों, वृतरन्तस्तु हतो हतः " ।।

भारतीय संस्कृति के अनुसार चरित्र की रक्षा यत्नपूर्वक की जानी चाहिए। धन तो आता है और चला जाता है जिसका धन नष्ट हो जाता है वह मरे हुए के समान हो जाता है।

गॉधी जी ने अपने एक भाषण में कहा था– " मैं अनुभव करता हू और सारे जीवन में अनुभव किया है कि संसार के सभी देशों को केवल चरित्र की आवश्यकता है और चरित्र से कम किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं।"

---

(1) चन्द्रगुप्त सशक्त भारत — पंण्डित दीनदयाल उपाध्याय — पृष्ठ–163
(2) शिक्षा के दर्शनिक सिद्धान्त — पाठक एवं त्यागी — पृष्ठ–3

चारित्रक विकास पर जो देते हुए भूतपूर्व राष्ट्रपति डा0राधाकृष्णन ने कहा है–

" चरित्र भाग्य है चरित्र वह वस्तु है, जिसपर राष्ट्र के भाग का निर्माण होता है तुच्छ चरित्र वाले मनुष्य श्रेष्ठ राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकते।" [1]

इन्ही सब बातों को ध्यान में रखते हुए हरवर्ट ने चरित्र निर्माण को शिक्षा के ध्येय के रूप में स्वीकार किया उसने केन्द्रीय विषय में इतिहास का प्रतिपादन किया। इतिहास में महापुरूषों की कथाओं के द्वारा हरवर्ट विद्यार्थियों मे चरित्र का निर्माण करना चाहता है।

स्वामी विवेकानन्द ने चरित्र को परिभाषित करते हुए कहा है कि–

" मनुष्य का चरित्र उसकी विभिन्न प्रवृत्तियों का समूह है उसके मन के समस्त झुकावों का योग है हमारा प्रत्येक कार्य हमारे शरीर की सभी गतिविधियां हमारा प्रत्येक विचार मन पर एक संस्कार छोड़ देता है ये संस्कार ऊपरी दृष्टि से अस्पष्ट होते हुएभी अज्ञात रूप से भीतर ही भीतर कार्य करने मे विशेष रूप से प्रबल होते है हमारी प्रत्येक क्रिया इन संस्कारों द्वारा नियमित होती है । मन के इन संस्कारों का समूह चरित्र है।"

चरित्र के दो पक्ष बताये गये है व्यक्तिगत चरित्र एवं सामाजिक या राष्ट्रीय चरित्र। व्यक्तिगत रूप से अपने अन्दर गुण सम्पादन करना व्यक्तिगत चरित्र की श्रेणी में आयेगा। मेरे किसी कार्य से समाज या राष्ट्र को हानि न पहुँचे, मेरे नाम राष्ट्र की समृद्धि करने वाले हो– राष्ट्रीय चरित्र की श्रेणी में आयेगा।

---

(1) शिक्षा स्वामी विवेकानन्द पंचमाध्याय

मुझे सुख मिले समाज चाहे दुखी हो, मैं भोग भोंगू, अन्यों को चाहे प्राणों की आहूति देनी पड़े , मेरा धर भरे। दूसरे चाहे अन्नाभाव या वस्ताभाव से तड़पते फिरे, यह राष्ट्रीय चरित्र का अभाव प्रदर्शित करता है। व्यक्तिगत चरित्र और राष्ट्रीय चरित्रत दोनो एक दूसरे पर परस्पर आधारित होते है।

भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन दोनो शुद्ध और पवित्र होना चाहिए। हम यह मानते है कि चरित्र व्यक्ति की सम्पूर्ण आन्तरिक शक्ति तथा तेज है जो उसके सारे व्यक्तित्व को प्रकाशित किये रहता हे इसमें व्यक्तिगत और सामाजिक दोनो ही क्षेत्र आ जाते है। अत' हम कह सकते है कि भारतीय दृष्टिकोण अधिक व्यापक है जबकि पाश्चात्य दृष्टिकोण संकुचित है। भारतीय संस्कृति के उपासक पंडित दीनदयाल भी इसी मत से सहमत है। उन्होंने कहा है–

" सामूहिक जीवन के इन संस्कारों को मजबूत करना ही प्रगति का मार्ग है प्रत्येक व्यक्ति मैं और मेरा विचार त्याग कर "हम" और "हमारा" विचार करें। अन्यथा कई बार देखा जाता है कि व्यक्ति कहता है कि राष्ट्र के लिए जान हाजिर है और जीवन में सब कार्य व्यक्ति का विचार करना ही करता रहता है इसमें न व्यक्ति का ही भला न समिष्ट का। वास्तव में समिष्ट के लिए कार्य करना याने धर्माचरण की भी शिक्षा होती है। आगे भी संस्कार डालने होते है। इन संस्कारों को प्रदान करना ही राष्ट्र का संगठन करना है।" [1]

पण्डित जी का कहना है कि–

शिक्षा और संस्कार से ही समाज के जीवन मूल्य बनते और सुदृढ़ होते हे इन

---

(1) राष्ट्र जीवन की दिशा दीनदयाल उपाध्याय मै और हम" पृष्ठ–30

मूल्यों को बांध रखने के बाद लोकेच्छा की नहीं कभी अपने तटों का अतिक्रमण कर संकट का कारण नहीं बरेगी। '' (1)

माध्यिमिक शिक्षा आयोग(1952–53) ने धार्मिक नैतिक शिक्षा की अपेक्षा 'चारित्र की शिक्षा' पर बल दिया तथा सलाह दी कि –

'' चरित्र निर्माण का कार्य एक प्रकार की प्रायोजना है जिसमें विद्यालय के हर शिक्षक को तथा विद्यालय के हर कार्यक्रम को बृद्धिमता पूर्वक सहयोग देना चाहिए, चरित्र की शिक्षा का कार्यक्रम तब पूरा हो सकेगा जब घर समाज तथा विद्यालय तीनों का वातावरण उपयुक्त होगा। तीनों को परस्पर एक दूसरे का सहयोग प्राप्त होगा।'' (2)

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय ने अपनी चन्द्रगुप्त पुस्तक में महापद्मानन्द' के लिए कहा है कि 'व्यवसनी व्यक्ति राष्ट्र भी बेच देता है उसके लिए उसका अपना सुख, वैभव, पद, प्रतिष्ठा ही सब कुछ है राष्ट्र कुछ नहीं, वह अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिए विराट(राष्ट्र) को भी खो देने के लिए तैयार रहता है। अतः दीनदयाल जी कहते थे कि भारत भूमि में जन्म लेने वाले बालक की उत्तम शिक्षा व्यवस्था वही है जो चरित्र का निर्माण कर सके। ज्ञान, चरित्र और संस्कृति के संगम से ही शिक्षा तीर्थराज प्रयाग बनती है। हमारे यहां पुस्तकीय ज्ञान को वास्तविक ज्ञान नहीं माना गया है। शास्त्रों का ज्ञान होने के बाद भी उसे शिक्षित या ज्ञानी नहीं माना गया है अनुभूत ज्ञान को ही ज्ञान माना गया है।

---

(1) शिक्षा समाज का दायित्व– पंडित दीनदयाल उपाध्याय पृष्ठ –63

(2) माध्यमिक शिक्षा आयोग की रिपोर्ट 1952–53

" ज्ञान जब दैनंदिनी जीवन में आचरण का सहज स्वाभाविक ढंग से अभिन्न अंग बन जाता है उसी को चरित्र कहते है। करनी व कथनी का भेद उज्जवल चरित्र सम्पन्न व्यक्ति में लुप्त हो जाता है।" (1)

वर्तमान समय में हमें कैसी शिक्षा व्यवस्था समाज को देनी चाहिए जिसके द्वारा चरित्र निर्माण का कार्य किया जा सक इस प्रश्न के उत्तर में महान शिक्षा विचारक श्री विनायक वासुदेव ने कहा है–

" शिक्षा का व्यापक प्रसार स्वागत करने योग्य है किन्तु शिक्षा को केवल पेट पालने की विद्या का जो स्वरूप प्राप्त हो गया है उसके कारण हमारे सामाजिक जीवन में कई समस्याएं उत्पन्न हो रही है। चरित्रवान, तेजस्वनी, धर्मज्ञ और जीवन में आतम विश्वास के साथ पदार्पण करने वाला युवा वर्ग इन दिनों कही नहीं दिखाई देता।.......... इस दृष्टि से पुरानी भारतीय शिक्षा प्रणाली की ग्राहय बांते खोजकर आज की निर्जीव शिक्षा प्रणाली में प्राण फूंकने का प्रयास अपेक्षित है।" (2)

(iii) <u>प्राचीन संस्कृति तथा भौतिकता वाद का समन्वय–</u> पण्डित दीन दयाल उपाध्याय ने धर्म का मानव का प्राण माना है वह कहते थे–

"महत्ता किसी वस्तु की है तो वह धर्म है यदि हमारा प्राण कहीं है तो वह धर्म में है धर्म गया कि प्राण गया। इसलिए जिसने धर्म छोड़ा वह राष्ट् से च्युत हो गया उसका सब कुछ चला गया।" (3)

---

(1) शिक्षा में राष्ट्रीय बोध, सरस्वती शिशु मंदिर के आधारभूत बिन्दु, विद्याभारतीय " ज्ञान एवं चरित्र" राणा प्रताप सिंह पृष्ठ–23
(2) पण्डित दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन खण्ड–2 एकात्मक मानव दर्शन सकात्म समाज व्यवस्था, विनायक वासुदेव नेने, सुरुचि प्रकाश केशव कुन्ज नई दिल्ली पृष्ठ–83
(3) एकात्मक मानव दर्शन व्यष्टि समिति में समरसता "राज्य और धर्म " पृष्ट–43

पंडित जी ने मानव के संकलित जीवन का विचार किया है। प्राचीन भारतीय संस्कृति एव आध्यात्म के साथ–साथ भौतिक वाद का समन्वय करना चाहते थे। पण्डित जी उन लोगों से कभी सहमत नहीं रहे जो जीवन के किसी एक ही पहलू को महत्वपूर्ण मानकर अन्य पहलुओं की उपेक्षा करते थे इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा–

"भारतीय जनसंघ के पास एक स्पष्ट आर्थिक कार्यक्रम है परन्तु उसका स्थान हमारे सम्पूर्ण कार्यक्रम में उतना ही है जितना भारतीय संस्कृति में अर्थ का। पाश्चात्य संस्कृति भौतिकवादी होने के कारण अर्थप्रधान है। हम भौतिकवाद और अध्यात्मकवाद दोनो का समन्वय करना चाहते है। " [(1)]

पण्डित दीनदयाल जी ने भारतीय संस्कृति को भी उतना ही स्वीकार किया है जितना जीवन के विकास के लिए हितकर है रूढ़िवादिता या अन्धविश्वास को नकारा है तथा भौतिक वाद को भी जीवन में आवश्यकताओं की पूर्ति भर के लिए स्वीकार किया हे। किसी को भी सर्वज्ञ नहीं माना जैसा कि उनके विचारों से पता चलता है।

"हमने अपनी प्राचीन संस्कृति का विचार किया है लेकिन हम कोई पुरातत्वेत्ता नहीं हे। हम किसी पुरातत्व संग्राहलय के संरक्षक बनाकर नहीं बैठना चाहते है। हमारा ध्येय संस्कृति का संरक्षण नहीं है अपितु आपको गति देकर सजीव व सक्षम बनाना है । हमें उनकी रूढ़ियां समाप्त करनी होगी, बहुत से सुधार करने होगें।" [(2)]

---

(1) दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्र चिन्तन अध्याय–13 विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था
राष्ट्रधर्म पुस्तक प्रकाशन लखनऊ।
(2) एकात्मक मानव दर्शन, राष्ट्रीय जीवन के लिए अनुकूल अर्थ रचना
पण्डित दीनदयाल उपाध्याय पृष्ठ–74

अतः प्राचीन भारतीय संस्कृति के नाम पर ऑख बन्द करके चलते जाना पण्डित जी के जीवन में नहीं था और भौतिकवाद के नाम पर विलासिता के पूर्ण रूपेण विरोधी थे। जैसे उनका कहना था कि–

"जितनी भौतिक आवश्यकताएं है उनकी पूर्ति का महत्व हमने स्वीकार किया है परन्तु उन्हे सर्वज्ञ नहीं माना।" (1)

अतः पण्डित जी के अध्ययन के परिणाम स्वरूप यह कहा जा सकता है कि पण्डित दीन दयाल उपाध्याय ने अपने विचारों के द्वारा भारतीय संस्कृति और भौतिक वाद का समन्वय करते हुए 'एकात्मक मानववाद' नाम नव रसायन का निर्माण किया है जो भारत के लिए ही नहीं, अपितु विश्व मानव के लिए विकास का मार्ग प्रशस्त करता है।

लेकिन पण्डित जी के बारे में निर्विवाद रूप से यह कहा जा सकता है कि उनकी कल्पना मानव जाति तक ही समिति नहीं। उनका समन्वयवाद इस बात का धोतक है कि मानव चेतना विश्वव्यापी चेतना के रूप में विकिसित हो सकती है। इसलिए वे संकुचित दायरे वाले न होकर मानवव्रादी थे उन्होंने अपनी विचार प्रणाली के लिए उपयुक्त नाम 'समन्वयवाद' ही दिया। वे हंसते–हंसते कहा भी करते थे। भाई हम न समाजवादी न साम्यवादी है न पुरातनवादी है न भौतिक वादी हम तो समन्वयवादी है।

(iv) <u>राष्ट्रीयता–</u> " व्यं राष्ट्रे जागृयातः" अर्थात हमें राष्ट्र के प्रति जागरूक रहना चाहिए। पंडित दीनदयाल जी जगतगुरू शंकराचार्य के माध्यम से स्वतत्रंता आन्दोलन

---

(1) एकात्मक मानव दर्शन, राष्ट्रीय जीवन के लिए अनुकूल अर्थ चरना
पण्डित दीन दयाल उपध्याय पृष्ठ –74

के लिए जवानों को प्रेरित करके उनमें देश प्रेम की उत्कृत भावना का समावेश करके राष्ट्र के लिए जीवन समर्पण करने की आकांक्षा उत्पन्न करना चाहिते थे। स्वार्थ से ग्रस्त समाज का ह्दय झकझोरते हुए उन्होंने कहा।''

'' हम अपनी इन ऑखों से शक और हूर्णो के अत्याचार नहीं देखते? इन पाशविक कृत्यों को देखकर हमारा ह्दय क्यों नहीं रोता? सूनी ऑखों में क्या अपने इन बिन्दुओं के लिए दो ऑसू भी शेष नहीं रह रहे''....... (1)

अपनी राष्ट्रीय एवं प्राचीन परम्परा की रक्षा का आवाहन करते हुए पंडित जी ने लिखा है '' उसका तो एक ही धर्म है अपने शासन की जड़े मजबूत करना और उसके लिए ही वह सब प्रकार के प्रपंत्र रचता है। उन्हीं के निमित्त इन शासकों के प्रपंच थे। वे जानते है कि यदि भारतवर्ष की प्राचीन परम्परा बनी रही, इसकी सामाजिक व्यवस्था बनी रही तो यह सदैव के लिए हमारे चंगुल में नहीं रहा कसेगा'' (2)

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय अपनी लेखनी के माध्यम से कार्य एंव व्यवहार के माध्यम से राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ के बौद्धिक वर्गो के माध्यम से समाज में राष्ट्रीयता की भावना भरने का सफल प्रयास करते रहे। अपने सम्पूर्ण विवेचन में पण्डित दीन दयाल उपाध्याय जी ने अपने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की कल्पना को साकार करने का प्रयास को राष्ट्रीय जीवन के लिए अधिकतर मानते थे। अतः भारतीय राष्ट्र जीवन के पुनः निर्माण की वेला में पाश्चात्य सम्पर्क प्रभाव के कारण कटी हुई नयी पीढ़ी

---

(1) राष्ट्रधर्म और सम्प्रदाय
पं०दीनदयाल उपाध्याय — पृष्ठ—87

(2) राष्ट्रधर्म और सम्प्रदाय — पृष्ठ—89

को अपनी प्राचीन अवधारणाओं से सुसम्बद्ध करना चाहते थे। उनका कहना था–

" इतने लम्बे काल खण्ड में हमारी प्रकृति और परम्परा अक्षुण्य रही, हमें इसका ठीक विचार कर अपनी प्रतिमा के भरोसे आधुनिक प्रगति की दिशा निर्धारित करनी होगी। हमारी जीवन पद्धति हमारा मार्गदर्शन करने के लिए विद्यमान है। यह सही है कि हम हजारों वर्षो के इतिहास को जैसा का वैसा लेकर नहीं चल सकते तथापित हमारी जीवन पद्धति के जो मूल तत्व है उन्हें भुलाकर हम नहीं चल सकते। हम उन्हें युगानुकूल बनाकर ग्रहण करना होगा। नूतन सूझ बूझ और पुरातन गुण गरिमा का मणिकांचन संयोग उपस्थित करने चलना होगा। आधुनिक कार्य योजना और पुरातन सन्दर्भ शिक्षा लेकर नव निर्माण के चरण बहाने होगें........" (1)

(V) <u>मातृभाषा का विकास</u>– पण्डित दीनदयाल अपने जीवन काल मे चल रहे भाषा विवाद में सक्रियता पूर्वक शामिल कर हमेशा अपने तर्क पूर्ण मन प्रस्तुत करते रहे। उनका कहना था मुस्लिम आक्रमणों के सम्पूर्क से उत्पन्न एवं अग्रेंजों के कारण आरोपित अग्रेंजी राष्ट्रीय स्वाभिमान को आहत करने वाली भाषायें , पंडित जी भाषा को राजनीति का मुद्दा नहीं बनाने देना चाहते थे। उनका मानना था कि भाषा को राजनीति का मुद्दा बना देने से हिन्दी के विकास में बाधा उत्पन्न हुई है। उपाध्याय जी ने कहा भी है कि" राजनीतिज्ञ भाषा के नाम पर लड़ सकते है पर भाषा का सृजन नहीं कर सकते..................." (2)

---

(1) राष्ट्रजीवन की दिशा आधुनिक प्रगति की दिशा सारांश
प्रण्डित दीनदयाल जी — पृष्ठ–191

(2) राष्ट्रभाषा की समस्या पण्डित दीनदयाल उपाध्याय — पृष्ठ–31

दीनदयाल उपाध्याय मानते है " कि 26 जनवरी 1965 के बाद अग्रेंजी का जारी रहना राष्ट्रीय लज्जा का विषय है" [1] उपाध्याय जी ने कैसे पुरजोर आग्रह किया कि कम से कम " विदेशों से व्यवहार करते समय निश्चित रूप से हमें हिन्दी का ही उपयोग करना चाहिए हमें तो अपने स्वाभाविक राष्ट्रीय स्वाभिमान के कारण अग्रेंजी को इस क्षेत्र से विदा करना चाहिए।"

दीनदयाल उपाध्याय ऊर्दू को पृथक वाद व सम्प्रदायवाद की भाषा मानते है ऊर्दू को हिन्दी की शैली के नाते जवित रहने में उन्हे आपत्ति नहीं हैं पृथक भाषा के नाते उसकी सुरक्षा की मांग को ये अनुचित समझते है।

उपाध्याय जी कहते है " भारत जैसे बहुभावी देश के लिए प्रत्येक विद्यार्थी को देश की कम से कम दो भाषाओं का ज्ञान आवश्यक है ही, यदि इसे बोझ माना भी जाये तो एक बड़े देश के वासी होने के नाते हमें यह बोझ उठाना ही होगा इन दो भाषाओं में एक हिन्दी है।"

दीनदयाल जी चाहते थे कि " प्रादेशिक भाषाएं व हिन्दी मिलकर अग्रेंजी के साथ लड़ाई लड़े पर यह सम्भव नहीं हुआ, दक्षिण में हिन्दी विरोधी आज भी प्रादेशिक राजनीति का बड़ा मुद्दा है उन्होनें अग्रेंजी को अनिवार्य किया है तथा हिन्दी की पढ़ाई की अनिवार्यता बन्द किया है।" (1)

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय मनसा बाचा कर्मणा मातृभाषा के पक्षधर थे विदेशी भाषा उन्हें स्वीकार नहीं थी। वे हिन्दी के ही अग्राही थे।

---

(1) पण्डित दीनदयाल उपाध्याय कर्तव्य एवं विचार........ डा0महेशचन्द्र शर्मा पृष्ट–160

(vi) लोक कल्याण– सम्पूर्ण पृथ्वी के लोगों को कुटुम्ब अर्थात परिवार मानने की भावना का उद्घोष भारतीय संस्कृति ने ही किया है।

हमारे देश में ही लोकापकारी ऋषि ने अपने निजी स्वार्थ, सुखों को तिलांजलि देते हुए ईश्वर से कामना की है कि हे ईश्वर

" नतृ अहं कामये राज्ये नमोक्षन पुर्नभवम्
केवल दुखः तत्पतानां प्राणि नामार्तिनाशनम् "

मैं न तो राज्य की कामना करता हूँ न मोझ प्राप्त कराना चाहता हूँ न पुनः जन्म लेना चाहता हूँ मैं केवल एक बात चाहता हूँ कि दुख से पीड़ित सभी व्यक्तियों का दुख दूर हो जावे।

पंडित जी सम्पूर्ण विश्व की समस्याओं को सुलझाकर मानव कल्याण की स्थापना मे भारत वर्ष के सक्रिय सहयोग के आकांक्षी थे। पंडित जी प्रवर राष्ट्र भक्त होते हुए भी भारतीय संस्कृति के पुरोधा के नाते विश्व कल्याण की चिन्ता को मानस पटल से ओझल नहीं होने दिया। उनकी राष्ट्र भावना संकीर्ण नहीं थी उनी राष्ट्रीयता , अन्तर्राष्ट्रीयता के मार्ग की बाधक नहीं वरन पोषक थी।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने अपने लेखों, भाषणों साहित्यिक रचनाओं एवं कार्य व्यवहार के द्वारा लोक कल्याण की भावना को विकसित करने का आजीवन प्रयास किया। यही उनके जीवन का उनकी शिक्षा का उद्देश्य था। उनका सपना था कि –

" हम ऐसे भारत का निर्माण करेगें जो हमारे पूर्वजों ने भारत से अधिक गौरवशाली होगा, जिसमें जनमा मानव अपने व्यक्तित्व का विकास करता हुआ सम्पूर्ण मानवता ही नहीं अपितु सृष्टि के साथ एकात्मकता का साक्षात्कार कर

" नर से नारायण " बनने में समर्थ हो सकेगा। यह हमारी संस्कृति का शाश्वत देवी और प्रवाह मान रूप है। चौराहे पर खड़े " विश्वमानव " के लिए यही हमारा दिग्दर्शन है ईश्वर हमें शक्ति दें।" (1)

(vii) समीक्षात्मक विचार

अशिक्षित, अपरिष्कृत एवं असंस्कारित लोकमत ही सामाजिक बुराईयों को जन्म देता है ऐसा पडित उपाध्याय जी का मानना था। अतः तमाम सामाजिक बुराईयों को दूर करने के लिए लोकमत को शिक्षित एवं संस्कारित करना ही हमारी प्रमुख आवश्यकता है और लोक मत परिष्कार का कार्य राज्य के मोह, लोभ एवं भय से ऊपर उठे हुए व्यक्ति ही कर सकते है पण्डित दीनदयाल जी का मानना था कि शिक्षा के द्वारा ही लोकमत को परिष्कृत किया जा सकता है । चाहे वह विद्यालयी शिक्षा के द्वारा ही अनौपचारिक शिक्षा के द्वारा तथा संघ में चलने वाले शारीरिक शैक्षिक एवं अन्य कार्यक्रमों के द्वारा। शिक्षकों के साथ–साथ उदार एवं कुशल संगठक व्यक्ति इस कार्य को बहुत ही सफलता पूर्वक कर सकते है। इस दृष्टि से राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ ऐसी ही उत्कृष्ट कार्य सारे देश में कर रहा है। इसीलिए उन्होंने भी संघ के लिए अपना जीवन सर्वज्ञा अपिर्तत किया।

इस प्रकार सामाजिक परिवर्तन के लिए उपाध्याय जी शिखा को ही एक मात्र माध्यम बताया। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य सभी पुरूषार्थ को प्राप्त करता है। इतना ही नहीं अपने कल्याण के साथ–साथ अपने स्वार्थो की पूर्ति के साथ–साथ दूसरों के हितो की भी चिन्ता करता है।

---

(1) राष्ट्रीय जीवन के अनुकूल अर्थरचना– " हम विराट को जागृत करें एकात्मक मानव दर्शन " पं0दीनदयाल उपाध्याय पृष्ठ 76

पण्डित दीनदयाल जी ने शिक्षा के द्वारा जिन उद्देश्यों को प्राप्त करने की बात कही उसमें धर्म और अधर्म का स्पष्ट मान व्यष्टि और समिष्ट के हितों की सीमाओं का ज्ञान परम्परा और परिवर्तन का सम्बन्ध लोकमत परिष्कार एवं सामाजिक सुधार प्रमुख है।

सामाजिक यथास्थिति बाद के विरोधी होते हुए भी पं०दीनदयाल जी उग्र परिवर्तन के समर्थक नहीं थे अतः लोगों ने उनके तथा संघ के दर्शन को यथास्थिति वादी माना है लेकिन पं०जी का विचार था कि ''समाज सुधारक'' परिवर्तन के लिए व्यग्र रहते है '' क्रान्तिवादी'' समूल उलट देने की बात कहते है जो दोनो ही सामाज के धोतक है। इसका विपरीत प्रभाव हानिकारक हो सकता है। इसलिए तत्काल चमत्कार की चिन्ता छोड़कर समाज को संस्कारित करने का कार्य मन्द गति एवं अथक परिश्रम से ही साध्य होता है। विकास की इस प्रकिया को सही दिशा देने का कार्य शिखा ही कर सकती है। सामाजिक विषयों में उन्होंने ''शिक्षा'' पर अपेक्षाकृत अधिक कमबद्ध विचार प्रस्तुत किये है।

(ख) <u>पाठ्यक्रम–</u>

शिक्षा की दृष्टि से पाठ्यक्रम शिखा का एक अभिन्न अंग है पाठ्यक्रम के अभाव में शिक्षा उद्देश्यहीन एवं अव्यवस्थित ही रहती है। अतः शिक्षा के द्वारा निर्द्रिष्ट मानवीय मूल्यों की प्राप्ति के लिए पाठ्यक्रम को अतिआवश्यक माध्यम के रूप में महत्व प्राप्त है।

'' पाठ्यक्रम की आधुनिक धारणा विस्तृत तथा व्यापक है इसके अन्दर कक्षा के अन्दर जो भी अनुभव छात्र प्राप्त करता है वह तो सम्मिलित है ही साथ ही कक्षा के बाहर का अनुभव भी शामिल है। सभी बौद्धिक विषय विधि कौशल अनेकानेक

कार्य पढ़ना, लिखना, शिल्प, खेलकूद आदि क्रियाकलाप पाठ्यक्रम के क्षेत्र के अन्तर्गत है............... कक्षा पुस्तकालय प्रयोगशाला क्रीड़ा क्षेत्र और विद्यालय प्रांगण में प्राप्त किये जाने वाले समस्त अनुभवों को अपने आंचल में समेट लेता है और ब्यैक्तिक तथा सामाजिक क्षेत्रों के सभी उधोगों, व्यवसायों , कौशलों एवं अभिवृत्तियों को अपनी परिधि में समेट लेता है।.................. इसी माध्यम से हम जीवनादर्शो की प्राप्ति का प्रयास करते है।" (1)

पाठ्यक्रम की परिभाषा देते हुए प्रसिद्ध विद्धान " मुनरो " ने कहा है–

" पाठ्यक्रम में वे समस्त अनुभव निहित है जिनको विद्यालय द्वारा शिखा के उद्देश्यों को प्राप्ति के लिए उपयोग में लाया जाता है। " (2)

तथा फ्रावेल के अनुसार–

" पाठ्यक्रम को मानव जाति के सम्पूर्ण ज्ञान तथा अनुभव का सार समझना चाहिए"। (3)

शोधकर्ता की दृष्टि से नयी समाज रचना के लिए पण्डित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रणीत् एकात्म मानव दर्शन को वर्तमान शैक्षिक पाठ्यक्रम का आधार बनाया जाना चाहिए। जिसके द्वारा हम अपने खोये हुए गुणों, गौरव एवं मूल्यों को पुनः प्राप्त कर सकेंगें।

अतः आज सभी वर्तमान शिक्षा पद्धति में परिवर्तन लाने की आवश्यकता अनुभव कर रहे है। गैर सरकारी क्षेत्रों जैसे " विद्या भारती " आदि संगठनों ने इस

---

(1) शिक्षा के सिद्धान्त पाठ्यक्रम — पाठक एवं त्यागी — पृष्ठ–382
(2) –तदैव– — पृष्ठ–383
(3) –तदैव– — पृष्ठ–387

दिशा में प्रयास प्रारम्भ किये है। वर्तमान में प्रचलित शिक्षा पद्धति के विकल्प के रूप में भारतीय शिक्षा पद्धति के विकास हेतु देश में चिन्तन चल पड़ा है। इसी दिशा में अपने कदम बढ़ाते हुए शोधकर्ता ने राष्ट्रजीवन के लिए संजीवनी के रूप मे एकात्म मानव दर्शन पर आधारित निम्नलिखित पाठ्यक्रम प्रस्तुत करने का प्रयास किया।

(i) पाठ्यक्रम की रूपरेखा– मनुष्य की समस्त क्रियाओं का उद्देश्य सुख की प्राप्ति ही है इसलिए ऐसे पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाना चाहिए जिसके द्वारा मनुष्य "सुख" को प्राप्त कर सके।

1. पंडित दीनदयाल के अनुसार–

   शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक आत्मिक एवं अध्यात्मिक क्रियाओं के साथ–साथ परोपकार की भावना उत्पन्न करने वाली क्रियाओं को पाठ्यक्रम में रखा जाना चाहिए।

2. " संभूत्वा अमृतं अश्नुता " संघ से अमरत्व प्राप्त होता है। संघ जीवन समुदायिक जीवन जीना ही अमरत्व प्राप्त करना है इस दृष्टि से मैं, के वास्तविक रूप " हम" को ग्रहण करना चाहिए। (1)

   अतः ऐसा पाठ्यक्रम सुनिश्चित किया जाये जो व्यक्तिवादी भावना से उड़कर संघवादी एवं सामुदायिक जीवन जीने की प्रेरणा दे। अर्थात सामुदायिक क्रियाओं को पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए।

3. पाठ्यक्रम में "संस्कृति" एवं "सांस्कृतिक क्रियाओं" को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए।

---

(1) राष्ट्र जीवन की दिशा "मैं और हम" पृष्ठ–31
पंडित दीनदयाल उपाध्याय

4. राजनीति से हटकर अस्थाई सत्य को ही वास्तविक न मानकर विशुद्ध राष्ट्रभाव को पुष्ट करने वाला पाठ्यक्रम ही राष्ट्र के पुनर्निर्माण में सहायक सिद्ध होगा।

5. साम्प्रदायिकता का हमारे यहां कोई स्थान नहीं है। अतः पाठ्यक्रम के अन्तर्गत असाम्प्रदायिक विषयों को स्थान दिया जाना चाहिए। इस प्रकार पण्डित दीनदयाल जी साम्प्रदायिकता विहीन धार्मिक भावना को जागृत करने वाले पाठ्यक्रम के पक्षधर है।

6. राष्ट्र की प्रकृति के अनुकूल त्याग और अनाशक्ति की आदर्श तथा पक्ति भावना उत्पन्न करने वाला पाठ्यक्रम वर्तमान समाज में व्याप्त कृतियों को समाप्त करने में सहायक होगा।

7. धर्म के तत्वों के अनुसार लौकिक और पारलौकिक उन्नति हेतु संस्कारित एवं परिष्कारित करने वाला पाठ्यक्रम बांछनीय है।

8. हिन्दू धर्म और संगठनकारी तत्वों को पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाये।

9. शोधकर्ता के अनुसार " हिन्दू राष्ट्रवाद " या भारतीय राष्ट्रवाद का पाठ्यक्रम का विषय बनाया जाना चाहिए।

10. व्यक्ति और समाज के बीच समन्वय और सौहार्द्ध बनाये रखना।

11. शोधकर्ता की दृष्टि से पंडित दीनदयाल जी समस्त झंझावातों से सुरक्षा प्रदान करने के विचार से भारत की आत्मा के अनुरूप हिन्दू जीवनादर्शो को पाठ्यक्रम में स्थान देने का पक्षधर थे।

12. महापुरूष अपने धर्म, अपने राष्ट्र, अपने देश की प्रत्येक वसतु यहां तक कि माटी से भी आगध स्नेह उत्पन्न करने वाले पाठ्यक्रम का निर्माण करना।

13. व्यक्ति और राष्ट्र को आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाने के लिए पण्डित दीनदयाल जी सैन्य शिक्षा, कृषि शिक्षा, औधोगिक शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, इंजीनियरिंग शिक्षा, व्यवसायिक शिक्षा, प्रावधिक शिक्षा, यातायात शिक्षा, जनसंख्या शिक्षा तथा सामाजिक शिक्षा को पाठ्यक्रम की विषयवस्तु बनाये जाने के हिमायती थे।

14. पण्डित दीनदयाल जी व्यायाम को शिक्षा का अंग बनाये जाने के पक्षधर थे। क्योंकि व्यक्ति को वलोपासना के लिए व्यायाम का कष्ट तो उठाना ही पड़ेगा।

अतः पण्डित जी व्यायाम के लिए खेलों की आवश्यकता को स्वीकार करते है तथा शोधकर्ता भी उपरोक्त विवेचन के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुचता है कि जीवन में व्यायाम अतिआवश्यक है इसी बात को ध्यान रखते हुए पण्डित जी " व्यायाम" को शिक्षा का अंग बनाना चाहते थे जिसके कि आने वाली पीढ़ी हृष्ट पुष्टि एवं स्वस्थ्य रहकर राष्ट्र को सवल बनाऐ।

पण्डित दीनदयाल जी के अनुसार " पाठ्येत्तर क्रियाओं " का भी पाठ्यक्रम से समावेश हो। पाठ्येत्तर क्रियाओं के अन्तर्गत पिकनिक ,शैक्षिक यात्राओं, शिवरों एवं सहभोजों का आयोजन किया जाना चाहिए। जिससे छात्र जाति, पन्थ, भाषा, निर्धन, धनवान छुआ–छूत आदि भेदभावों से ऊपर उठकर सामाजिक एकात्मकता एवं सहजीवन की अनुभूति कर सके। इस बात को ध्यान रखते हुए सरस्वती शिशु मंदिरों एवं विद्या मन्दिरों मे योग शिक्षा को पाठ्येत्तर क्रिया के रूप में स्वीकार किया गया है?

पण्डित दीनदयाल जी राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ के स्वंय सेवक थे और संघ में सरल संगीत और गीतों के माध्यम से किशोरों के हृदयों ने राष्ट्रीयता और एकात्मता की सजह भावना विकसित की जाती है अतः शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पण्डित दीनदयाल जी गीत और संगीत को पाठ्यक्रम में स्थान दिये जाने के पक्षधर थे।

(ii) समीक्षात्मक विचार

वर्तमान समय में सम्पूर्ण देश में अनेकानेक शिक्षण संस्थाए शिक्षा देने का कार्य कर रही है जिनका एक मात्र उद्दृदेश्य रहता है विद्यार्जन के बाद छात्र को धनार्जन के योग बनाना" जिसका परिणाम द्रेखने को यह मिल रहा है कि मानवीय गुणों का ह्रास हो रहा है। पंडित उपाध्याय जी इस बात के पक्षधर दिखाई देते है।

कि ऐसे पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाना चाहिए जो छात्रों के लिए अर्थोपार्जन में सहायक सिद्ध हो सके लेकिन जीवन के प्रति अतिक्षय अर्थवादी दृष्टिकोण के लिए वह सर्वथा विपरीत थे। उन्होंने कहा भी है–

" मनुष्य के जीवन का यह सर्वांगपूर्ण विचार ऐसी किसी भी अर्थ रचना की कल्पना नहीं कर कसत्रा जिसमें नैतिक, सामाजिक और अध्यात्मिक मूल्यों की प्रतिष्थापना किये बिना ही मनुष्य को सुखी बनाया जा सके।" (1)

पाठ्यक्रम शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन है। अतः पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जिसके द्वारा शारीरिक व्यवसायिक, मानसिक, नैतिक एवं अध्यात्मिक उद्दृदेश्यों की पूर्ति की जा सक। विद्यार्थियों को अपने प्रकृति के अनुकूल विषय चयन

---

(1) भारतीय अर्थनीति विकास की एक दिशा–
पण्डित दीनदयाल उपाध्याय, लोकहित प्रकाशन लखनऊ पृष्ठ–22

की सुविधा हो पाठ्यक्रम बालक के लिए होना चाहिए न कि बालक पाठ्यक्रम के लिए। पाठ्यक्रम का असामान्य भार बालक के मष्तिष्क को बोझिल बना देता है इसलिए उसकी रूचि मानसिक स्तर का ध्यान रखा जाना चाहिए।

शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उपाध्याय जी ने पाठ्येत्तर क्रियाओं के आयोजन का सुझाव दियां उनका मानना है कि दुर्बल व्यक्ति किसी भी प्रकार सुख नहीं प्राप्त कर सकता। इसलिए व्यक्ति को शारीरिक रूप से स्वस्थ्य एवं वलिष्ट होना चाहिए, इस हेतु उन्होंने व्यायाम की शिखा पर विशेष बल दिया उन्होंने कहा है– " बिना औषधि के रोग ठीक नहीं होता और व्यायाम का कष्ट उठाये बिना बल भी नही आता।" (1)

वर्तमान समाज मे प्रचलित अस्पृश्यता ऊँच–नीच, भेदभाव, गरीबी, बेरोजगारी, मंहगाई, दहेज आदि बुराईयों से छात्रों को प्रत्यक्ष परिचित कराने के लिए उन्होंने पाठ्येत्तर क्रियाओं पर बल दिया।

(ग) शिक्षण विधि

शिक्षण की प्रक्रिया में तीन कारण नीहित रहते है प्रथम बालक, जो इस प्रक्रिया का आधार बिन्दु है, द्वितीय विषय वस्तु जो उसे सीखनी है और तीसरा है शिक्षण जो सीखने में सहायता प्रदान करता है। अर्थात सीखना या सिखाना ही शिक्षण विधि है।

शिक्षक को यह स्मरण, रखना चाहिए कि बालक काम करके और स्वंय खोज करके उत्तम ढंग से सीखता हे। शिक्षक तो उसकी सहायता करता है,उसके लिए उपयुक्त वातावरण का निर्माण करता है, उसके अन्दर की सृजनात्मक शक्ति का

---

(1) राष्ट्रीय जीवन के अनुकूल अर्थ रचना– पंडित दीनदयाल उपाध्याय पृष्ठ–73

विकास करके उसकी रूचि को जागृत करता है।

रूसों, फ्रोबेल, हरवर्ट, स्पेन्सर, ड्यूबी और गांधी जैसे शिक्षा शास्त्रियों ने नवीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन करके नवीन विधियों को प्रस्तुत किया। किण्डर गार्डेन, माण्टेसरी , डाल्टन प्रोजैक्ट, हयूरिस्टिक तथा बेसिक शिक्षा आदि ऐसी नवीन विधियां है जिनमें बालक को केन्द्र बिन्दु मानकर उसकी रूचियों ,अभिरूचियों, योग्यताओं एवं भिन्नताओं का ध्यान रखते हुए उसका विकास किया जाता है पण्डित दीनदयाल उपाध्याय ने भी अपनी शैक्षिक विचारधारा को जन जन तक पहुँचाने के लिए निम्नांकित शिक्षण विधियों को अंगीकृत किया है शोधकर्ता द्वारा उनका विवेचन प्रस्तुत है।

(i) <u>आगमन एवं निगमन विधि</u>– यह विधि एक स्वाभाविक विधि है इस विधि के द्वारा बालक पाठ्य वस्तु को सरलता पूर्वक सीख लेता है इसमें शिक्षक शिक्षार्थियों के सामने कुछ विशिष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते है, शिखार्थी इनमें सामान्य तत्वों की खोज करते है अन्त में नियम अथवा सिद्धान्त प्रतिपादन करते है।

<u>इस विधि में</u>– " ज्ञान से अज्ञान की ओर विशिष्ट से सामान्य की ओर "

" मूर्त से अमूर्त की ओर सरलता से कठिन की ओर चला जाता है।

शोधकर्ता की दृष्टि से प्रायः सभी शिक्षण कार्य में आगमन निगमन विधि सन्निहित रहती है अतएव पण्डित दीनदयाल जी की शिक्षा में भी आगमन निगमन विधि का प्रयोग हुआ है।

(ii) <u>मनोवैज्ञानिक शिक्षण विधि</u>– मनोविज्ञान ने प्राचीन शिक्षण विधियों में परिवर्तन करके ऐसी विधियों को जन्म लिया है जिससे बालक स्वंय रूचिपूर्वक सीख

सकता है। माण्टेसरी शिक्षण विधि, किण्डर गार्डन ओर हयूरिस्टिक शिक्षण विधि ऐसी मनोवैज्ञानिक शिक्षण पद्धतियां है जो बालक की रूचि और स्वभाव को विशेष ध्यान रखती है। पाठ् योजना के निर्माण में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त बालक की रूचि, रूझान,म ल प्रवृत्ति क्षमता और योग्यता को परखने में सहायता प्रदान कतरे है पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जी ने भी अपनी शिक्षण प्रणाली के अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक शिक्षण पद्धति को अपनाया है।

(iii) रचनात्मक शिक्षण प्रणाली– राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ रचनात्मक कार्यो के माध्यम से समाज और राष्ट्र की अहर्निशिी सेवा करने वाला एक सांस्कृतिक हिन्दू संगठन है। जिसके एक–एक कार्यकर्ता के मुॅह से यह रचनात्मक गीत अनायास ही प्रस्फुटित होता रहता है।

" निर्माणों के पावन भुज में, हम चरित्रनिर्माण न भूले।

स्वार्थ साधना की आंधी में, वसुधा का कल्याण न भूले।।"

(iv) सीखने के अवसर प्रदान करना– जन्म से लेकर मृत्यु तक व्यक्ति कुछ न कुछ सीखता रहा है अर्थात सीखना मनुष्य की जन्मजाति प्रवृत्ति हे कोई भी ऐसी शिक्षा प्रणाली नहीं होगी, जिसमें सीखने के अवसर उपलब्ध न हो। पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने लिखा है–

" सीखने का प्रयास पाठशालाओं और विश्वविद्यालयों में ही नहीं घर–घर में तथा खेत खलियान ,कारखानों, दुकानों, खेल के मैदानों में चलता रहता है। पण्डित उपाध्याय जी ने मात्र पुस्तकीय ज्ञान को पर्यान्त नहीं माना, बल्कि शिक्षा को आजीवन चलने वाली सत्त प्रकिया मानते हुए समस्त अनुभवों एवं व्यवहृत ज्ञान को सैद्धान्तिक ज्ञान का पूरक माना है तथा सीखने

के अवसर प्रदान करने वाली शिक्षण पद्धति को अपनी शिक्षा प्रणाली में प्रमुख स्थान प्रदान किया है।

(v) मातृभाषा शिक्षण विधि– माता द्वारा सीखी हुई मॉ मातृभूमि पर बोली जाने वाली भाषा को मातृ भाषा माना है। मातृभाषा सीखने का सरलतम साधन है मातृभाषा अर्थग्रहण के साथ साथ अभिव्यक्ति की भी सरलतम् माध्यम है। बालक के सर्वांगीण विकास के लिए मातृभाषा का शिक्षण अत्याधिक महत्वपूर्ण है। पण्डित दीनदयाल उपाध्याय मातृभाषा को ही शिक्षण का माध्यम बनाना चाहते थे। उनका कहना है कि–

" इस दृष्टि से यह स्वाभाविक है कि शिक्षा का माध्यम स्वभाषा ही हो सकती है, भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं, वह स्वंय भी अभिव्यक्ति है। भाषा के एक–एक शब्द, वाक्य रचना, मुहावरों आदि के पीछे समाज के जीवन की अनुभूतियां राष्ट्र की धटनाओं का इतिहास छिपा हुआ है। फिर स्वभाषा व्यक्ति को अलग अलग प्रकोष्ठों मे नहीं बॉटती।" [1]

(vi) कियात्मक शिक्षण विधि– यह विधि स्वाभाविक रूचिकर होती है इस विधि के द्वारा गूंगे, बहरे और मानसिक दृष्टि से कमजोर बच्चों को भी पढ़ाया जा सकता है। इस विधि के द्वारा शिक्षण कार्य करने से विद्यार्थी के अन्दर परिश्रम करने की सहज प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है।

" पंडित दीन दयाल उपाध्याय कियाशील शिक्षण पद्धति के समर्थक थे उनका मानना था कि बालक को ऐसी विधि के द्वारा शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे वह कर्मठ और कियाशील बनकर कमाने के योग्य हो जाये और सुखी

---

(1) राष्ट्र चिन्तन "शिक्षा" पण्डित दीनदयाल उपाध्याय पृष्ठ–102

जीवन व्यतीत कर सके। मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए इस विधि की अनिवार्यता को स्वीकार किया है।

(vii) साहित्य एवं ललित कलाओं का शिक्षण– पण्डित दीनदयाल जी के अनुसार किशोरों एवं तरूणों के ह्दयों मे मातृभूमि के प्रति स्नेह और ममता जागृति करने एवं उत्कृष्ट देश भक्ति की लहरे उत्पन्न करने के लिए प्रेरणादायक गीतों को माध्यम के रूप में स्वीकार किया गया है जिससे कि बालक को पाठ्य पुस्तके अरूचिकर न लगें। इस दृष्टि से साहित्य और ललित कलाओं का शिक्षण अतिआवश्यक प्रतीत होता है।

(viii) वैज्ञानिक विधि– समय की मांग के अनुसार देश के उज्जवी भविष्य के निर्माण की दृष्टि से पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने भी अपनी शिक्षण विधि में वैज्ञानिक विधि का महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। उनका मानना है कि हमें पुरानी रूढ़ियों से चिपके नहीं रहना, वरन नवनिर्माण के लिए नए–नए विचारों नियमों और सिद्धान्तों को लेकर चलना होगा। और विविधता में निहित एकता की शिक्षा देने के लिए तथा एकता का विविध रूपों में व्यक्तीकरण करने के लिए वैज्ञानिक विधि को अपनाया है। देशकाल और परिस्थितियों के आधार पर नियमों के पालन करने की शिक्षा दते समय उन्होंने वैज्ञानिक विधि– का प्रयोग किया हे।

वैज्ञानिक शिक्षण विधि का प्रमुख उद्देश्य होता है– शिक्षण को प्रभावशाली बनाना, जिससे कम से कम समय में अधिक से अधिक सिखाया जा सके।

(ix) स्वाध्याय एवं व्याख्यान विधि– " ज्ञान के प्रसार के लिए विविध प्रयास करना (1) स्वाध्याय (2) प्रवचन।" [1]

स्वाध्याय मनुष्य का स्वंय का अध्ययन है पुस्तकालय, वाचनालय आदि की व्यवस्था के लिए आवश्यक है जबकि व्याख्यान विधि ज्ञान प्रसार का साधन है। इसके लिए बड़ी–बड़ी विचार गोष्ठियों का आयोजन होता है। गम्भीर एवं विवादस्पद प्रश्नों को हल करने के लिए विद्धानों के सम्मेलन बुलाएं जाते है। वर्तमान समय में व्याख्यान विधि का प्रयोग सबसे अधिक किया जाता है विशेषकर उच्चशिक्षा मे धर्म, दर्शन, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और शिक्षा शास्त्र जैसे विषयों के अध्ययन में सभी शिक्षक इसी विधि के द्वारा शिक्षण कार्य करते है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का अधिकांश चिन्तन तो उनके व्याख्यानों का ही संकलन हे। अपने चिन्तन दर्शन के प्रसार के लिए उन्होंने व्याख्यान विधि का सर्वाधिक प्रयोग किया है। वह हिन्दू राष्ट्र के व्याख्याता भी थे। इनके भाषणों का संग्रह " राष्ट्र जीवन की समस्याएं" नाम से प्रकाशित हुआ था।

(x) दृश्य श्रव्य साधनों का प्रयोग– बालक की कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों का दृश्य श्रव्य शिक्षण विधि के द्वारा बालक को ज्ञान प्राप्त करना सुगम हो जाता है तथा ऐसा ज्ञान शीध्र विस्तृत नहीं होता वरन् स्थाई होता हे। इसी विधि के द्वारा प्राचीन काल में कथा, कीर्तन और नाटकों आदि के द्वारा समाज को संस्कारित करने का कार्य किया जाता था।

---

(1) भारतीय शिक्षा के मूल तत्व शिक्षा के सिद्धान्त एवं पद्धतियां पृष्ठ–159
लज्जा राम तोमर सुरचित प्रकाशन झण्डेवाला, नई दिल्ली

दृश्य श्रृव्य साधनों को शिक्षण के सशक्त माध्यम से रूप मे स्वीकार करते हुए प्रण्डित दीनदयाल उपाध्याय जी ने कहा है–

" प्राचीन काल के कथा और नाटक तथा आज के रेडियों, सिनेमा, समाचार पत्र आदि सभी इस सीमा में आते है?" [1]

(XI) समीक्षात्मक विचार

उपरोक्त शिक्षणउ विधियों की समीक्षा करने पर अनुभव किया कि उपाध्याय जी ने अपनी शिक्षण परिधि में प्राचीन एवं अर्वाचीन दोनो ही शिक्षण विधियों का समन्वय जैसी प्राचीन विधियों का अपनी शिक्षण विधि में स्थान दिया वही दूसरी और मनोवैज्ञानिक, वैज्ञानिक,रचनात्मक, कियात्मक एवं दृश्य श्रृव्य जैसी अधुनातम् शिक्षण विधियों का प्रयोग करने में किसी भी प्रकार का संकोच नहीं किया।

उनकी शिक्षण विधियों के अध्ययन के उपरान्त शोधकर्ता यह कह सकता है कि उपाध्याय जी किसी एक शिक्षण विधि के अनुयायी या पिछलग्गू नहीं थे, वरन अपनी शिक्षा प्रणाली के अनुरूप अपनी सूझबूझ के अनुसार उपयुक्त शिक्षण विधियों को ग्रहण किया।

मानव को संस्कारित करने की दृष्टि से उन्होंने रचनात्मक शिक्षण विधि तथा साहित्य एवं ललितकलाओं के शिक्षण की व्यवस्था की । अतः पण्डित जी ने अपनी शिक्षा में वर्तमान शैक्षिक उद्‌देश्यों की प्राप्ति हेतु शिक्षण विधियों का कुशल समन्वय एवं समायोजन किया।

---

(1) राष्ट्रचिन्तन– पण्डित दीनदयाल उपाध्याय पृष्ठ–101
राष्ट्रधर्म पुस्तक प्रकाशन,लखनऊ

(घ) अनुशासन–

सफल शैक्षिक व्यवस्था के लिए अनुशासन की आवश्यकता होती है अनुशासित बालक ही विद्यालय के नियमों का पूर्णतया पालन करता है।

प्राचीन काल में " गुरूकुलों के छात्रों का जीवन दरूह अनुशासनों से पूर्ण होता था। सम्पूर्ण शिक्षण काल में ब्रह्मचार्य जीवन व्यतीत करना पड़ता था सूक्ष्म रूप में शारीरिक दण्ड भी उनके लाभ और सुधार की भावना से निहित होता था गुरू हर तरह से अपने शिष्य का ध्यान रखता था।" [1]

प्राचीन काल की भांति बौद्ध काल में भी अनुशासन पर अत्याधिक बल दिया जाता है। छात्र को फूल पत्तियों तोड़ने, सम्पत्ति रखने, सार्वजनिक स्थानों पर तपासा देखने गाली–गलौज और झगड़ा का पूर्ण निषेध था।

मुस्लिम शिक्षा के अन्तर्गत कठोर शारीरिक दण्उ की व्यवस्था थी। पाठ याद न होने पर वेंत , कोड़े, लात, घूंसे, थप्पड़ आदि से शारीरिक दण्ड दिया जाता था विशेष अपराध होने पर कठोर शारीरिक यातनाएं दी जाती थी।

आधुनिक शिक्षा शास्त्रियों ने दमानात्मक अनुशासन का पूरी तरह से विरोध किया उनका मानना है कि यह सिद्धान्त बालक की मनोवृत्तिया, इच्छाओं और रूचियों का दमन करता है तथा शिक्षक को अनुचित बल प्रयोग की शिक्षा देता हें प्रजातंत्र में इस प्रकार के अनुशासन को कोई स्थान नहीं दिया जाना चाहिए।

आज शिक्षा संस्थाओं में ही नहीं अपितु सारे समाज में अनुशासनहीनता का सम्राज्य स्थाति हो गया है। विद्यार्थी समाज का अंग होता है उसके अनुशासनहीन

---

(1) भारतीय शिक्षा की समस्याए (प्राचीन भारतीय शिक्षा)
पंडित दीनदयाल उपाध्याय पृष्ठ–18

होने में समाज के रचनात्मक कार्यो की प्रगति अवरूद्ध हो जाती है।

वर्तमान में अनेको घटनाएं विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में अनुशासनहीनता की दिन प्रतिदन घटती रहती है। सत्याग्रह आन्दोलन हड़ताल झगड़े और तोड़फोड़ तो आम बात बन गयी है। छात्र अनुशासनिक रहने की अपेक्षा अनुशासन तोड़ने के लिए अधिक उत्सुक रहते है। विद्यालय समाज का लधु स्वरूप होता है तथा विद्यार्थी समाज का अंग और कल का नहीं आज का नागरिक है यदि नागरिक अर्थात विद्यार्थी अनुशासनहीन हो गया तो सम्पूर्ण समाज अनुशासनहीन हो जायेगा।

महान शिक्षा शास्त्री जॉन डयूबी ने भी अनुशासन की स्थान के लिए सामाजिक जीवन के महत्व पर बल देते हुए कहा है "विद्यालय में अनुशासन का अर्थ सामाजिक अनुशासन है।" (1)

पण्डित दीनदयाल जी " आत्मसंयम अर्थात स्वतन्त्र अनुशासन पर बल देते हुए कहा है– शिक्षा और संस्कार से ही समाज के जीवन मूल्य बनते और सुदृढ़ होते है। इन मूल्यों का बांध रखने के बाद लोकेच्छा की नदी कभी अपने तटों को अतिक्रमण कर संकट का कारण नहीं बनेगी।" (2)

एक स्थान परन उन्होने यहभी कहा है कि " अनुशासन और अंहकार साथ–साथ नहीं चल सकते। अनुशासन के लिए वुद्धि आवश्यक है।" (3)

जो शिक्षा के द्वारा शुद्ध होती और मनुष्य को अंहकार रहित बनाती है।

---

(1) शिक्षा के दार्शनिक सिद्धान्त– प्रयोजनवादी या प्रयोगवादी विचारक जान डयूबी "अनुशासन" पाठक एवं त्यागी पृष्ठ 264
(2) राष्ट्रजीवन की दिशा– लोकत परिष्कार – प0दीनदयाल उपाध्याय पृष्ठ–84
(3) पंडित दनीदयाल उपाध्याय, कर्तव्य एवं विचार सामाजिक सकियता एवं विचार पृष्ठ 326

पण्डित जी का मत है कि " दण्ड या प्रताड़ना के द्वारा नहीं वरन् आदर्शो की शिक्षा और जिम्मेदारी का भाव उत्पन्न करने से बालक के अन्दर स्वयमेव अनुशासन उत्पन्न हो जाता है। बच्चों को उसकी आन्तरिक इच्छाओं के अनुसार स्वतंत्रता पूर्वक कार्य करने दिया जाये जिससे उसके अन्दर योग्यता बढ़ाने की शक्ति जगे अधिक से अधिक परिश्रम करने की कोशिश करें। हम इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अनुशासन में लेने के लिए दण्ड की अपेक्षा संस्कारित किया जाये। उसके ऊपर जिम्मेदारी डाली जाय उसको प्रोत्साहित किया जाये। उसको बताया जाये कि अनुशासन प्रतिबन्ध नहीं बल्कि समय है और सामजस्यपूर्ण " जीवन मे संयम की नितान्त आवश्यकता है।" (1)

समीक्षात्मक विचार

पण्डित दीन दयाल जी की शिक्षा के तीन अंग है समाज, शिक्षण और छात्र उनके अनुसार " समन्वित शिक्षकत्रृणी ही समाज में सर्वागपूर्ण शिक्षा नीति की प्रत्याभूति।" (2)

समाज को सुदृढ बनाने के लिए शिक्षा की एवं शिक्षा के व्यापक और विवधता पूर्ण योजना के लिए उपाध्याय जी शिक्षक की भूमिका के साथ साथ स्वःअनुशासन में रहकर ही छात्र समाज का विकास कर सकती है। अतः समाज के विकास के लिए छात्र अनुशासित होना चाहिए।

---

(1) राष्ट्रजीवन की दिशा— लोकमत परिष्कार — पृष्ठ–82
पंडित दीनदयाल उपाध्याय

(2) पण्डित दीनदयाल उपाध्याय– कर्तव्य एवं व्यक्तित्व — पृष्ठ–310शिक्षा–
डा0महेश शर्मा

पण्डित दीनदयाल जी शिक्षा संस्थाओं में स्वतंत्र अनुशासन के पक्षधर दिखाई देते है। जैसा कि उनका कहना है कि " इस ज्ञान की छाप जितनी गहरी सुस्पष्ट और सुव्यवस्थित रहेगी, उतना ही मानव अपनी जीवन यात्रा में सरलता और शान्ति से पग बड़ा सकेगा।" (1)

(ड़) छात्र एवं अध्यापक

शिक्षाशास्त्री एडम्स के अनुसार– " शिक्षा द्विमुखी प्रक्रिया है।"

द्विमुखी प्रक्रिया का अर्थ है एक ध्रुव शिक्षक और दूसरे ध्रुव पर छात्र। एक शिक्षा देने का कार्य करें और दूसरा शिक्षा प्राप्त करें। इस प्रकार छात्र और अध्यापक कर्म और कर्ता का सम्बन्ध रहता है।

(i) छात्र– छात्र शिक्षा प्रक्रिया का आवश्यक अंक है इसके बिना शिक्षा की प्रक्रिया चल ही नहीं सकती।

" वैद्दिक काल में गुरू की अवधानता में जीवन व्यतीत करना उनकी आज्ञाओं को सहर्ष स्वीकार करना ही विद्यार्थियों का आदर्श था अपने गुरूकुल जीवन में विद्यार्थी जमीन पर या काठ के तख्ते पर सोते थे। विद्याध्ययन ही ब्रह्मचारी बालक का प्रमुख कर्तव्य था इससे बालकों के शारीरिक, मानसिक एवं अध्यात्मिक शक्तियों का विकास होता था और मनुष्य के समस्त गुणों से विभूषित होते थे।" (2)

ब्रह्मचर्य आश्रम का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि " मानव जीवन से पशुत्व पूर्ण रूप से उन्मूलन कर विशुद्ध देव जीवन निर्माण करने का सामर्थ जिस

---

(1) राष्ट्रचिन्तन– शिक्षा पंडित दीनदयाल उपाध्याय — अध्याय–114
राष्ट्रधर्म पुस्तक प्रकाशन लखनऊ — पृष्ठ–99

(2) विश्वकोष के महान शिक्षा शास्त्री– विनोवा भावे, गुरूकुल जीवन — पृष्ठ–829,830

काल में प्राप्त होता है वहीकाल ब्रह्मचार्य का काल होता है। [1]

पंडित जी वैदिक कालीन गुरूकुल के छात्रों की तरह ही आज के विद्यार्थी को देखना चाहते थे। वे छात्रों को निःशुल्क शिक्षा प्रदान किये जाने के हिमायती थे। उनका कहना था कि " भारत में 1947 से पूर्व सभी देशों राज्यों में कही भी शिक्षा के लिए शुल्क नहीं लिया जाता था। उच्च श्रेणी तक शिक्षा निःशुल्क थी।" [2]

छात्रों को शिक्षित करना समाज के हित में होता है क्योंकि शिक्षित छात्र समाज को उन्नतिशील बनाने में अपना योगदान करता हे। अतः शिक्षा के बदले छात्रों से शुल्क लेना पंडित जी को स्वीकार नहीं था पंडित जी तो शिक्षा को विनियोजन मानते थे वे कहते थे–

" बच्चों को शिक्षा देता समाज के हित में है................. जो काम समाज के हित में हो उसके लिए शुल्क लिया जाये यह तो उल्टी बात है। [3]

पण्डित जी ने आशंका व्यक्त की थी कि यदि अर्थाभाव या अन्य कारणों से छात्र शिक्षा प्राप्त करना बन्द कर देगें तो हमारा समाज पशु समाज जैसा होकर रह जायेगा। कल्पना करें कि कल शिक्षा शुल्क का बहिष्कार करके अथवा उसे देने में असमर्थ होने के कारण बच्चे पढ़ना बन्द कर दें।"

---

(1) वैदिक राष्ट्र दर्शन खण्ड–2 वैदिक राष्ट्र की शिक्षा विधि– ब्रह्मचार्य आश्रम
महामहोपाध्याय वालशास्त्री हरदास
सुरुचि साहित्य केशव कुन्ज झण्डेवाला, नई दिल्ली।

(2) एकात्ममानव दर्शन राष्ट्रीय जीवन के अनुकूल अर्थ रचना
शिक्षा समाज का दायित्व पृष्ठ–63

(3) राष्ट्रीय जीवन के अनुकूल अर्थरचना– पंडित दीनदयाल उपाध्याय पृष्ठ–63

पंडित जी की यह आशंका कुछ हद तक सही सिद्ध हो चुकी है स्वतंत्रता के 56 वर्षों के बाद भी हम संविधान में वर्णित शिक्षा लक्ष्य को प्रापत नहीं कर सके, और वर्तमान समय में आज शुल्क मुक्ति, छात्रवृत्ति, योजना वितरण, पुष्टाहार वितरण, ड्रेस व्यवस्था और पुस्तक व्यवस्था आदि के द्वारा छात्रों को आकर्षित करने के सरकार द्वारा प्रयास किये जा रहे हे। प्रधानमंत्री नरसिंहराव के द्वारा शिक्षा की और आकर्षक बनाने के लिए दोपहर के भोजन की व्यवस्था के साथ–साथ बीमा की योजना लागू की गयी है। विश्व बैंक द्वारा " सबके लिए शिक्षा" के लिए कार्यक्रम चलाकर अधिक से अधिक छात्रों को शिक्षित करने के प्रयास जारी है।

(ii) <u>अध्यापक</u>–शिक्षक शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण एवं आवश्यक अंग है। विद्यालय भवन, पाठ्यसामग्री, शिक्षण पद्धति बिना योग्य शिक्षक के सभी निरर्थक होते है। योग्य एवं चरित्रवान शिक्षक भौतिक साधनों के अभाव में भी छात्रों को उत्तम शिक्षा प्रदान कर सकता है।

भारतीय शिक्षा के इतिहास में शिक्षक के पद को गौरवान्वित करने वाले महान आचार्य,ऋषियों की रम्परा रही है जिनके सम्मान में सम्राट भी सिंहासन को छोड़कर खड़े हो जाते थे। आधुनिक यंग के शिक्षकों में स्वामी दयानन्द, लोकमान्य तिलक, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, मदनमोहन मालवीय, स्वामी विवेकानन्द , महात्मागांधी, महिर्ष अरविन्द, राधाकृष्णन, संत विनोभा भावे की कीर्ति पताका भारत में नहीं, सारे विश्व में फहरा रही है। वर्तमान काल में भारतीय संस्कृति एवं आदर्शो के अनुरूप शिक्षा के स्वरूप को विकसित करने के लिए शिक्षक के पद कोह में वही प्रतिष्ठा प्रदान करनी होगी और शिक्षकों को भी उसी तरह का सम्मान प्राप्त हो, इसके लिए उन्हें भी अपने अन्दर पहले जैसा आदर्श और गुरूता स्थापित करनी होगी।

पण्डित जी का कहना था कि " हमारी यह शिक्षा विशेषकर औपचारिक शिक्षा निर्जीव कर्म काण्ड न बन जाएं, अतः आवश्यक है कि शिक्षा के व्यापक अर्थो को समझने वाले व्यक्ति अध्यापक बने तथा समाज शिक्षक को सम्मानित पद के नाते स्वीकार करे।" (1)

आज हमारे देश में आदर्श शिक्षकों की कमी होती जा रही है तथा लोग इस कार्य को हेम समझने लगे है– यथा पण्डित दीनदयाल जी ने एक बार मित्र से कहा कि मैं शिक्षक बनना चाहता हूँ तो उनके मित्र ने उत्तर में सुझाव दिया कि–

" कृपा करो तुम और कुछ भी कर लो चाहो तुम मोची बन जाओ, चाहे सड़क के किनारे बैठकर जूते गॉठने का कार्य करो लेकिन इस गंदे मास्टरी के काम को मत अपनाओ............ अध्यापक बनने में तुम्हारी " इस लोक और परलोक" दोनो लोको में जीवन का समस्त सम्भावनाएं निश्चित रूप से समाप्त हो जायेगी।" (2)

पण्डित जी ने अपने मित्र के सुझावों को न मानकर शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय में प्रवेश ले लिया। उन्होंने स्वंय अध्यापक के विषय में जो अनुभव किया, लिखा है " यथा समय मैने प्रशिक्षण महाविद्यालय में प्रवेश लिया मैने वहा देखा कि– शिक्षण का यह उदात्त कार्य आज आदर्शवादी व सेवाभावी लोगों को आकर्षित नहीं कर पा रहा है। केवल वे लोग जो अन्यत्र स्थान पाने में असमर्थ होते है अध्यापक बन जाते है। (3)

---

(1) पण्डित दीनदयाल उपाध्याय कर्तव्य एवं विचार
शिक्षा "आचार्य" देवोभव।" डा0महेश चन्द्र शर्मा पृष्ठ–311

(2) कर्तव्य एवं विचार
पंडित दीदयाल उपाध्या डा0महेश चन्द्र शर्मा पृष्ठ–312

(3) पण्डित दीनदयाल उपाध्याय कर्तव्य एवं विचार
शिक्षा "आचार्य" देवोभव।" डा0महेश चन्द्र शर्मा पृष्ठ–312

पंडित जी ने वर्तमान शिक्षा जगत के पतन का कारण शिक्षकों व समाज द्वारा शिक्षकों की उपेक्षा स्वंय शिक्षकों में कार्य के प्रति निष्ठा की कमी को माना है। इस सम्बन्ध में अपने सुझाव देते हुए उन्होंने कहा है–

" जिस शिक्षक को हमारी, प्राचीन समाज व्यवस्था ने आचार्य देवोभव कहा उसके आभा मण्डल का यह अपखण्डन बहुत ही चिन्ताजनक है यदि हमें अपने समाज को सही अर्थो में सुशिक्षित करना है तो अध्यापक की गरिमा को पुनः स्थापित करना होगा।" (1)

(iii) छात्र अध्यापक सम्बन्ध–

शोधकर्ता ने पंडित दीनदयाल जी द्वारा निर्दिष्ट गुरू और शिष्य को गुणों की विवेचना की है इसके साथ वह गुरूशिष्य सम्बनधों की व्याख्या करना भी अपना कर्तव्य मानता है।

प्राचीन काल में हमारे यहां गुरू(शिक्षक) को अध्यात्मिक पिता तथा शिष्य (छात्र) को अध्यात्मिक पुत्र माना जाता था। अतः गुरू और शिष्य का सम्बन्ध पिता और पुत्र की तरह ही होता है। आचार्य या गुरू अपनी विद्या कौशल, प्रेम और साहनुभूति के द्वारा विद्यार्थी के जीवन का निर्माण करता था।

हमारे यहां के ऋषियों ,मुनियों ,तपस्वियों और आचार्यो ने रासक्राज तथा उधोगों और व्यवसायों के माध्यम से जीवकोपार्जन के काम को दूसरे के लिए छोड़ रखा था, स्वंय सम्पूर्ण जीवन केवल ज्ञान दान के कार्य में और वह भी बिना मूल्य होगा करने का वृत स्वीकार किया था। राजाओं के द्वारा आश्रमों को अवश्य मदद्

---

(1) पण्डित दीनदयाल उपाध्याय कर्तव्य एवं विचार
शिक्षा "आचार्य" देवोभव।" डा0महेश चन्द्र शर्मा पृष्ठ–312

मिलती थी लकिन गरू को मिलने वाला धन कमाने की धोर निन्दा की गयी है तथा उसे आचार्य जैसे श्रेष्ठ पद में रहने का अधिकारी ही नहीं माना गया है।

वर्तमान शैक्षिक जगत इतना दूषित हो गया है कि गोस्वामी तुलसीदास द्वारा कही गयी बात पूर्णतया चरितार्थ हो रही है।

" गुरू शिष्य वधिर अन्धका लेखा। एक न सुनहि एक न देखा।"

पिता पुत्र के सम्बन्ध तो दूर ,वैर भाव उत्पन्न हो गया है। आये दिन छात्र और अध्यापकों में झगड़े होते रहते है आपसी वैमनस्य आम बात हो गयी है। मात्र धनोपार्जन के उद्‌देश्य से शिक्षक बनने वाले व्यक्ति सदैव अधिकाधिक धनार्जन की उधेड़बुन में लगे रहे है, मौका लगने पर अपने छात्र से भी धन ऐठने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करते। छात्र भी शिक्षकों को अपमान करने में गर्व का अनुभव करते है।

पण्डित दीनदयाल जी ने इस दुराव्यवस्था को दूर करने एवं प्राचीन परम्परा के अनुसार गुरू–शिष्य सम्बन्धी को चिरस्थायी बनाने के लिए शैक्षिक जगत के लिए हिचचिन्तक " अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद" नाम संगठन का निर्माण किया । विद्यार्थी परिषद आज भी शैक्षिक वातावरण को स्वच्छ बनाने के लिए शैक्षिक परिवार की परिकल्पना को साकार करने में सतत् प्रयत्नशील है यह संस्था गुरू शिष्य के अध्यात्मिक सम्बन्धों को मधुर बनाएगें तो निश्चित ही समाज पुनः उन्हें " आचार्य देवोभव" कहकर नतमस्तक हो जायेगा। शिक्षा पुनः अपने खाये हुए गौरव को प्राप्त करेगी, भारत पुनः जगत गुरू के सर्वोच्च पद पर पदासीन होगा।

अध्याय पंचम

महामना मदन मोहन मालवीय जी के मौलिक, दार्शनिक एवं शैक्षिक विचार

मालवीय जी के विचारों पर किसी एक दर्शन का ही अधिपत्य नहीं था वरन् उन पर सभी दर्शनों का समवेत प्रमाण था। प्रत्येक दार्शनिक विचार धारा ने उकने मनन और चिन्तन को प्रभावित किया था। महामहा जी का व्यक्तित्व उनके विचारों से अवचिनी थां आदर्शवाद, प्रकृतिवाद, प्रयोजन वाद, यर्थाथवाद, मानवता वाद एवं विश्ववाद सभी का प्रभाव महामना जी पर स्पष्ट दृष्टि गोचर होता है। उन्होंने सभी दर्शनों के रेष्ठ पखों को अंगीकृत कर तत्सम्बन्धी दोषों को त्याग किया। मुख्यतः आदर्शवाद और यर्थाथवाद उनके विचारों में प्रतिविम्बत हाते है। उन्होंने सभी दर्शनों के सार को लेकर एक नवीन दर्शन को जन्म दिया जिसे हम पुरा–प्रगतिवाद के नाम से सम्बोधित कर सकते है। महामना पूर्णतया प्रगतिशील विचारों के पोषक थे वे कदाचित रूढ़िवादी विचारों से चिपके नहीं रहना चाहते थे। वे समस्याओं का निराकरण यथार्थ वातावरण में करना चाहते थे। इस प्रकार महामना जी का शिक्षादर्शन ब्रह्मण की परिधि में व्याप्त होता है जो व्यापक है– अनन्त है। महामना के दर्शनिक विचारों को यही अनन्तता तथा व्यापकता उनकी शैक्षिक विचार धारा को जटिल एवं गूढ बना देती है जो सामान्य बुद्धि में समाने योग्य नहीं है।

शिक्षा के माध्यम से राष्ट्रीय चतना का एकीकरण एवं नवनिर्माण करने वाले महामना जी के राजनैतिक एवं सामाजिक कार्यो के अन्तर्गत उनकी शैक्षिक विचारधारा का प्रारूप परिलक्षित होता है। इसीलिए भारतीय शिक्षाविदों के मध्य महामना जी सर्वागीण शिक्षा की रूप रेखा प्रस्तुत करने वाले प्रथम शिक्षा विद् थे

उन्होंने सभी शिक्षाविदों की तथ्यात्मक बातों को गृहण कर एक व्यापक शिक्षा का प्रारूप तैयार किया। उनके शिक्षा सम्बन्धी कार्यों एवं विचारों का वर्णनात्मक विश्लेषण करके उनके शिक्षा सम्बन्धी विचारों को जानना ही शोधकर्ता ने अपने शोध कार्य का लक्ष्य निर्धारित किया है।

(क) **शिक्षा के उद्देश्य**– उन्नीसवी शदी के क्रान्तिकारी नेता एवं शिक्षाविद महामना जी के जीवन रूपी सागर में अग्रेंजी के अत्याचार रूपी झंझावत ने हलचल मचा दी थी। जिसके परिणाम स्वरूप महामना जी के मन में स्वराज्य प्राप्त करने की धुन सवार हो गयी। इसकी प्राप्ति के लिए उन्होंने हर सम्भव प्रयास किया। महामना जी की विचारधारा तथा तत्कालीन समाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप, शिक्षा के कुछ निश्चित उद्देश्य थे जो निम्नलिखित है–

(i) **स्वराज्य प्राप्ति**– महामना जी की शैक्षिक अवधारणा काम ूल उनकी स्वराज्य प्राप्ति की भावना ही थी, उन्होंनें " भारतीय समाज में ज्ञानरूपी अंकुर प्रस्फुटित कर इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु सहयोग प्राप्त करना चाहा। अपने अथक प्रयासों से सफल हुए और स्वराज्य प्राप्ति भी हुई। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए शान्ति ,उत्साह, प्रज्ञा, साहस, धीरज पौरूष, तेज, सहनशीलता प्रेम और स्वार्थ, त्याग इन उत्तम गुणों का संग्रह करना होगा। इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षा द्वारा नगर नगर एवं ग्राम ग्राम लोगों को स्वराज्य प्राप्ति का अर्थ उसकी आवश्यकता और उसकी महिमा समझाई जावे जिससे उनके हृदय में स्वराज्य प्राप्ति की उत्कृष्ट अभिलाषा. जागत हो .... इसके अतिरिक्त स्वराज्य प्राप्ति के आन्दोलनों में शिक्षा के माध्यम से जनता का सहयोग प्राप्त किया जावे। [1]

---

(1) मालवीय जी के लेख– अषाढ़ शुक्ल 13 सम्वत् 1964

(ii) चारित्रिक विकास– महामना जी चारित्रिक विकास हतु शिक्षा को प्रमुख साधन मानते थे वे स्वीकार करते थे कि विश्वविद्यालय की शिक्षा से विद्यार्थी के चरित्र विकास में परिपक्वता आती है। चारित्रिक विकास से तात्पर्य व्यक्ति के व्यक्तित्व के सर्वागीण विकास से है। उन्होंने चरित्र के विषय में न केवल व्यक्ति के चरित्र वरन् राष्ट्रीय चरित्र की महत्ता स्वीकारी है। राष्ट्रीय चरित्र हमारे राष्ट्रीय जीवन का मूलाधार है।

महामना जी ने भारतवर्ष के राष्ट्ीय चरित्र को बहुधर्म, बहुभाषा और बहुजाति वाले भारत की एकता और अखण्डता के लिए महत्वपूर्ण लक्ष्य अपनी शिक्षा के माध्यम से स्थापित किया।

(iii) संस्कृति एवं भौतिक वाद से समन्वय– महमना जी सनातनी हिन्दु थे, वे वैदिक कर्म के साथ सांस्कृतिक परम्पराओं में आस्था क्ररते थे। किन्तु सात्विकता के आधार पर रूढ़िवादिता को कभी स्वीकार नहीं करते थे। अपनी उसी प्राचीन संस्कृति, जिसकी गौरव गरिमा का गान आज सम्पूर्ण विश्व में गुजांय मान है, के वे प्रशंसक एवं पक्षधर थें। वे तामने थे कि वर्तमान युग ह्रास युग है। उसकी रक्षा करना, उसके अव्यवस्थित स्वरूप को व्यस्थित कर उसका समयानुकूल परिष्कार करना एवं उसकी अखण्डता को बनाए रखना, साथ ही वर्तमान वैज्ञानिक एवं भौतिक युग के साथ साथ चलने के लिए अपने अतीत मात्र के सहारे खड़ा रहना पर्याप्त नहीं है। अतः सभ्यता की दौड़ में सशक्त होने क लिए आधुनिक भौतिक विकास को ग्रहण कर संस्कृति के साथ उसका सम्बन्ध स्थापना महमना जी की शिक्षा का लक्ष्य था। महामना जी ने आधुनिक उपकरणों से मुक्त काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को स्वंय ही ''आधुनिक गुरुकुल'' नाम से सम्बोधित कर अपने लक्ष्य का निर्माण किया।

(iv) <u>लोक कल्याण</u>– भारतीयों पर इतने अत्याचारों को देखकर महामना जी ने अपनी शिक्षा का लक्ष्य विश्व कल्याण बनाया। उन्होंने सम्पूर्ण बसुधा को एक कुटुम्ब माना और सम्पूर्ण मानव प्राणियों को उस बृहत परिवार का सदस्य। उन्होनें कहा है कि '' परतन्त्रता'' एक दुखदायी स्थिति है, स्वतंत्रता आनन्दमयी, सुखदायी परिस्थिति है। धर्म स्वतंत्रता का पर्यायवाची है। धर्म मनुष्यत्व को पशुत्व से दूर कर ईश्वरत्व की ओर ले जाता है। सब धर्मा का मर्म आत्मज्ञान है पवित्र शुद्ध चिदानन्दमयी आत्मा मनुष्य की व्यक्तिगत आत्मा नहीं वरन् उच्च, महान तथा विश्व आत्मा है जिसका उद्देश्य मनुष्य में ईश्वरतत्व उत्पन्न करना है यही हमारी शिक्षा का ध्येय है।''

अतः स्पष्ट है कि महामना जी की शिक्षा का चरम लक्ष्य मानव में मनुष्यत्व का विकास करना है। यही संसार का सार है। मानसिक ,नैतिक एवं अध्यात्मिक उन्नति का मार्ग है ऐसा सर्वांग विकासशील लक्ष्य विश्वकल्याण का लक्ष्य महामना जी में आदर्शवादी विचारधारा को इंगित करता है।

(v) <u>उधोगों का विकास</u>– महामना जी भारतवासियों की बेकारी का अनुमान करके भारत में कुटीर उधोग धंधे चलाये जाने के पक्ष में थे वे वर्तमान शिक्षा प्रणाली को मात्र निकृष्ट नकल मात्र मानते थे, यह शिक्षा एंकागी थी। आधौगिक शिक्षा क्षेत्र के द्वारा व्यक्ति में स्वालम्बन का भाव आता है। साथ ही बेकारी का परिहार होकर स्वेदशी माल का प्रयोग होता है अतः महामना ने अपनी शिक्षा का उद्देश्य औधागिक एवं तकनीकी विकास पर केन्द्रति किया। महामना जी के अनुसार प्रत्येक जिला अथवा कमिश्नरी में इस प्रकार की माध्यमिक स्तर की, औधोगिक शिक्षण संस्थाएं स्थापित की जाये जिनमें हस्तकला, गृहविज्ञान, कुटीर उधोगों एवं शिल्प आदि की शिक्षा का प्रबन्ध हो जिससे बेकारी दूर हो एवं व्यक्ति जीविका उपार्जन में समर्थ हो

सके। इसके अतिरिक्त उन्होंने प्रत्युक प्रान्त में एक शिक्षा महाविद्यालय स्थापित करने पर बल दिया जिसमें शिल्प विज्ञान सम्बन्धी उच्च स्तरीय शिक्षा का प्रबन्ध हो।'' (1)

अतः स्पष्ट है कि महामना जी ने अपनी शिक्षा में उधेगों के विकास को सम्मिलित करके देश में औधोगिक क्रान्ति लाने का प्रयास किया। इस प्रकार उन्होंने साबरमती के संत महात्मागांधी के स्वप्न को पूर्ण किया।

(vi) <u>मातृभाषा का प्रयोग</u>— 26 जनवरी 1920 ईसवीं के काशी हिन्दु विश्वविद्यालय के द्रीक्षान्त भाषण में उन्होंनें कहा कि—

'' स्कूलों में ही नहीं, विश्वविद्यालय तथा उच्च श्रेणी में भी देशी भाषा के माध्यम द्वारा शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए, कोई भी ऐसा देश नहीं है जहां प्रारम्भिक और उच्च श्रेणियों की शिक्षा के लिए मातृभाषा का प्रयोग न किया जाता है। हमकों अपनी शिक्षा का माध्यम मातृभाषा बनाना चाहिए। ग्लेडस्टन के अनुसार '' अग्रेंजी भाषा एक बेसिर–पैर की भाषा जो भारतीयों को पागल बना देगी, उनका भाषा पर पूर्ण अधिकार ही नहीं होगा तो वे इसके माध्यम से सीखेगें क्यां।'' (2)

अतः शोधकर्ता यह अनुभव करता है कि महामना जी ने मातृभाषा के प्रयोग का पुरा ध्यान देकर भाषा के भटकाव को समाप्त कर अपनी संस्कृति के ज्ञान के लिए मातृभाषा द्वारा शिक्षा को अपनी शिक्षा का परम लक्ष्य माना।

(vii) <u>अन्य उद्देश्य</u>— 14 सितम्बर 1912 को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में बोलते हुए उन्होंनें शिक्षा के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए कहा था—

---

(1) प्रान्तीय कौसिंल में भाषण—सन् 1907

(2) मालवीय जी के लेख— पृष्ठ—42

" विद्यार्थियों को प्रयोगात्मक ज्ञान के साथ साथ विज्ञान, कला, कौशल और व्यवसाय सम्बन्धी ऐसी शिक्षा दी जाये जिससे व्यवस्था तथा घरेलू धंधों की उन्नति हो। [3]

(viii) <u>समीक्षात्मक विचार</u>– महाना जी के शैक्षिक लक्ष्यच सत्यं शिवं सुनदरम् की भावना से प्रणीत हैं महामना जी के शैक्षिक उद्देश्य आदर्शवाद एवं व्यवहारव्राद से प्रभावति है। आदर्श के साथ ही उन्होंने वर्तमान भौतिक परिवेश से समन्वय करने के लिए प्रयोगवाद को भी अपने लक्ष्यों में स्थान दिया है मुख्य रूप से तीन भागों में विभक्त किया गया है

1. श्रुतियों तथा स्मृतियों द्वारा प्रतिपादित वर्णाश्रम धर्म के पोषक सनातन धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए शिक्षक तैयार करना।
2. संस्कृत भाषा और साहित्य के अध्ययन की अभिवृद्धि।
3. भारतीय्र भाषाओं तथा संस्कृति के द्वारा वैज्ञानिक तथा शिल्प कला, सम्बन्धी शिक्षा के प्रचार में सहयोग देना।

महामना जी की शिक्षा में नारी शिक्षा को भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। महामना जी की नारी का स्वरूप कवि जयशंकर प्रसार जी की नारी "श्रद्धा की भांति नहीं है। वरन् उनकी नारी पाश्चात्य नारी की भांति शस्त्रधारी है, वह दया, परदा एवं पुरुषों के हाथ का खिलौना मात्र नहीं है। वह स्वालम्बी है, शक्ति है और आत्मनिर्भर है। महामना जी की शैक्षिक विचार धारा नारी शिक्षा के सम्बन्ध मे प्रगतिशील एवं परिवर्तनवादी है इस प्रकार स्पष्ट है कि महामना जी का चरम लक्ष्य आदेर्श नारी का निर्माण करना था जिससे कि एक श्रेष्ठ राष्ट्र का निर्माण सम्भव हो सके।

---

(1) मालवीय जी के लेख– पृष्ठ–68

अस्पृश्यता को महामना जी हिन्दु जाति का कलंक मानते थे। इसे दूर करने के लिए वे सार्वजनिक सम्मेलन में भाषण देने के साथ ी व्यवहार में भी उसे उतारते थे तथा शिक्षा के द्वारा इस क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्यो की रूपरेखा उनके द्वारा तैयार की गयी। हिन्दू मुस्लिम एकता के समर्थक महामना जी साम्प्रदायिकता के कट्टर विरोधी थे।

महामना जी शिक्षा के द्वारा धर्म पर भी बल दते थे धर्मावलम्बियों का आवाहन अपनी शिक्षा के माध्यम से करते थे। महामना जी शैक्षिक विचारों का अध्ययन करने हेतु शोधकर्ता शिक्षा की आधुनिक नीति के प्राणेता काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को अपने शोध कार्य का लक्ष्य बनाता है जिसमें कला, साहित्य तथा दर्शन साथ ही वैज्ञानिक, प्राविधिक, तकनीकी एवं आधोगिक शिक्षण की व्यवस्था की गयी है।

महामना जी शिक्षा के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना का एकीकरण एवं नवनिर्माण करना चाहते थे वह ऐसे व्यक्ति का निर्माण करना चाहते थे जो अपने पैरो पर खड़े हो सके। महामना जी की शिक्षा के व्यवहारिक तथा अजीविकोपार्जन परक आधुनिकतम शिक्षा के पक्ष मे थे शिक्षा में अमूल परिवर्तन सम्बन्धी उनके विचार ुयग की मांग के अनुरूप प्रगतिशील एवं आधुनिक है।

(ख) पाठ्यक्रम—

महामना जी ने स्वराज्य प्राप्ति का मूल आधार शिक्षा को मानकर शैक्षिक पाठ्यक्रम की अवधारण की, पाठ्यक्रम में मानव जीवन के विभिन्न पक्षों यथा शारीरिक , मानसिक आत्मिक, भावात्मक, सामाजिक नैतिक तथा अध्याधिक विकास को यथोचित स्थान प्रदान किया जाये इसके लिए आवश्यक है कि पाठ्यक्रम का निर्माण व्यापक दृष्टिकोण से किया जाये। महामना जी का पाठ्यक्रम इस दृष्टि से

खरा तथा सर्वपक्षीय था।

महामना जी ने अपने सैद्वान्तिक एवं व्यवहारिक पाठ्यक्रम को शिक्षा में स्थान देकर कुठाराधात किया। इस प्रकार इन्होंने वैद्विक चेतना के साथ ही कर्म करने की प्रेरणा को संवाहित किया। महामना जी की शिक्षा का लक्ष्य दो प्रकायात्मिक कार्यो में निहित था–

1. सामाजिक स्थिरता (सातत्य)
2. सामाजिक परिवर्तन

इस परिपेक्ष्य में महामना जी की शैक्षिक विचारधारा सातत्य और परिवर्तन पर आधारित था अतः यदि शिक्षा का लक्ष्य सातत्य एवं परिवर्तन है तो पाठ्यक्रम वह रास्ता है जिसे पार करके विद्यार्थी अपने निर्दिष्ट लक्ष्य तक पहुँचाता है माध्यमिक शिक्षा आयोग ने पाठ्यक्रम की व्यापक परिभाषा प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि–

" पाठ्यक्रम का अर्थ न केवल उन सैद्धान्तिक विषयों से है जो स्कूल में परम्परागत रूप से पढ़ाये जाते है, अपितु इसमें अनुभवो की वह सम्पूर्णता भी सम्मिलित होती है जिनको बालक, स्कूल कक्षा, प्रयोगशाला,कार्यशाला तथा खेल के मैदान मे एवं शिक्षकों और छात्रों के अनगिनत अनौपचारिक सम्पर्को से प्राप्त करता है और इस प्रकार स्कूल का सम्पूर्ण जीवन पाठ्यक्रम बन जाता है जो छात्र के सभी पक्षों को प्रभावित कर सकता है तथा विकास में सहायता दे सकता है। (1)

इसी आधार पर महामना जी द्वारा लागू किये गये पाठ्यक्रम की रूप रेखा निश्चित होती है। तात्कालिक परतंत्रता को ध्यान में रखते हुए जन जागरण का धोष शिक्षा के माध्यम से ही सम्भव था अतः इस बात को दृष्टिगत रखते हुए महामना ने

---

(1) माध्यमिक शिक्षा आयोग– सन् 1953

अपने उद्देश्यों के अनुसार पाठ्यक्रम का स्वरूप निर्धारित किया।

(i) पाठ्यक्रम की रूप रेखा—

महामना जी ने पराधीन भारत में इतना बहुमुखी पाठ्यक्रम रूपांकित कर विश्व क इतिहास में एक अपूर्व घटना को प्रणीत किया उनकी पाठ्यक्रम सम्बन्धी रुपरेखा को शोधकर्ता निम्न प्रकार प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा है।

1. महामना जी शिक्षा को चरित्र विकास का साधन मानते थे और इन्हें भारतीय संस्कृति और धर्म प्र अटूट आस्था थी।

2. महामना जी ने कला एवं विज्ञान की व्यवस्था काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में की और धर्मदर्शन तथा कला की शिक्षा के साथ ही विज्ञान तथा प्राविधिक की शिक्षा अति आवश्यक समझी उनके अनुसार " धर्म, दर्शन तथा कला की शिक्षा मनुष्य के सिर की भांति और विज्ञान तथा प्राविधकी की शिक्षा उसके धड़ के सामने है अतः शिक्षा के दोनो प्रकार एक दूसरे के पूरक है । कला के ब्रिना विज्ञान और विज्ञान के बिना कला शिक्षा अधूरी है। [1]

3. धार्मिक शिक्षा की दिशा में महामना जी संस्कृति द्रृष्टिकोण को न अपना कर व्यापक रूप में पाठ्य्रक्रम निश्चित करते है धार्मिक पाठ्यक्रम सत्यार्थ प्रकाश पर अवलम्बित था वह बिना धार्मिक विचारों पर आक्षेप किए मानव मात्र के उत्थान करने वाली बातों का साम्प्रदायिकता की परिधि से ऊपर उठकर प्रचार करना चाहते थे। महामना जी की धार्मिक भावना समिष्टवादी थी।

4. औधोगिक ,तकनीकी एवं प्राविधिक शिखा के अन्तर्गत, देश में महात्मागंधी द्वारा प्रचलित औधोगिक क्रान्ति का व्यवहृत रूप में प्रवर्तन एवं स्वदेशी उधोगों

---

(1) द्विवेदी के0डी0— भारतीय पुर्नजागरण और मदनमोहन मालवीय— पृष्ठ—143

के उन्नयन की क्रमबद्ध योजना सर्वप्रथम महामना जी ने हमारे सम्मुख रखी। महामना जी पुस्तकीय शिक्षा की अपेक्षा प्रयोगिक शिक्षा के समर्थक थे। वे चाहते थे कि तकनीकी ढंग की शिक्षा अपने देश में बड़े पैमाने पर प्रारम्भ की जोय। प्रयोग शाला तथा कार्यशाला में विद्यार्थियों को अपने हाथो से प्रयोग करने का अभ्यास कराया जाये। जिसमें से वर्तमान में वैज्ञानिक अन्वेषणों का अध्ययन नियमित और अनिवार्य हो सके।

5. "महामना जी जापान की कृषि शिक्षा व्यवस्था के बहुत प्रसंशक थे उनका कहना था कि जापान में कई सौ कृषि विद्यालय है जिनमें प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त, विद्यार्थियों को खेती की प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती है और बहुत सी माध्यमिक कृषि संस्थाएं है महामना जी चाहते थे कि इसी प्रकार के कृषि स्कूल तथा कृषि संस्थाएं काफी संख्या में पूरे देश के अन्दर स्थापित की जाये। कृषि सम्बन्धी समस्याओं पर अनुसंधान किया जाये तथा कृषि शिक्षक तैयार किये जाये वे कृषि महाविद्यालयों को विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध करना चाहते थे। (1)

6. महामना जी ने अतिरिक्त शैक्षिक प्राविधिक के अन्तर्गत काशी विश्वविद्यालय में व्यायामशालाओं का निर्माण किया था क्योंकि उनकी धारणा थी कि स्वास्थ्य शरीर में ही स्वस्थ्य मस्थ्तिक निर्माण करता है महामना जी मानव जीवन को संघर्ष मानते थे और संघर्ष के लिए अनिवार्य मानते थे कि व्यक्ति में बल हो, शक्ति हो इसके लिए वे प्राणायाम व्यायाम तथा आयुर्वेदिक आदि पर ध्यान

---

(1) मुकुट विहारीलाल– महामना मदनमोहन मालवीय जीवन और नेतृत्व(प्रान्तीय कौसिल ने भाषण 1907) पृष्ठ 620

देना चाहते थे उन्होंने कहा है कि " प्राणायाम के अभ्यास से हमारा शरीर स्वस्थ्य रहता है मन स्फूर्तिदायक एवं प्रसन्न हो जाता है हमें प्राणयाम के द्वारा जीवन सौन्दर्य से सिक्त जान पड़ता है जिसमें हम सुखमय जीवन व्यतीत करते है। [1]

(ii) <u>अन्य पाठ्यान्तर कियाओं की शिक्षा</u>– छात्रों के स्वःशासन, समाज सेवा, खेलकूद शारीरिक श्रम की दिशा में भी उन्होने कार्यविधि निश्चित की। न केवल शारीरिक एवं मानसिक श्रम क्षमता, तर्क वितर्क के माध्यम से विकसित करने पर बल दिया। वरन् इसके साथ ही राजनैतिक एवं व्यवहारिक शिक्षा को भी अपने पाठ्यक्रम में स्थान दिया।

महामना जी स्वंय संगीत का ज्ञान रखते थे। समय समय पर संगीत सभाओं का आयोजन करवाते थे, विश्वविद्यालय में भी संगीत शिक्षा का प्रबन्ध महामना जी ने किया वे संगीत की मानसिक विकास के लिए महत्वपूर्ण समझते थे । भारत नाट्यम तथा कत्थक नृत्य से वे विद्यार्थियों में शारीरिक स्वस्थता बनाएं रखना चाहते थे । सामूहिक नृत्यों के माध्यम से छात्रों मे सहकारिता एवं सहयोग की भावना आती है।

(iii) भाषा– महामना जी आधुनिक भाषाओं के समर्थक थे किन्तु उनके विकास के साथ ही वे विद्यार्थियों के मात्र भाषा शिक्षा पर भी विशेष बल देते थे उनके अनुसार " हमारी शिक्षा का ध्येय के बल विदेशी ज्ञान विदेशी भाषाओं के माध्यम से करना नहीं है, वरन् हमें दूसरों के साथ(स्तु:)को भी जानना है तभी हमारा वास्तविक विकास सम्भव है।" [2]

---

(1) मालवीय पी0के0– मालवीय जी के लेख (नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली 1962)
(2) मालवीय पी.के.– मालवीय जी के लेख– पृष्ठ–54

महामना जी की धारणा थी कि " साहित्य और देश की उन्नति अपने देश की भाषा द्वारा ही सकती है। "(1) इसीको वे शिक्षा के लिए शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते थे, इस माध्यम को वे विश्वविद्यालय स्तर तक अपनाना चाहते थे, साथ ही वे यह भी चाहते थे कि भारत में अग्रेंजी को दूसरी भाषा के रूप में स्थान मिले, सभी भाषाओं के साथ–साथ मातृभाषा के शिक्षण पर विशेष बल दिया।

महामना जी प्रारम्भिक स्तर पर बालकों को नैतिक, आचार व्यवहार की शिक्षा देने के पक्षधर थे, उनका मत था कि इस स्तर पर बालक को स्थूल वस्तुओं के माध्यम से शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे शैनेः शैनेः ज्ञानजिन कर विश्वविद्यालयी स्तर तक पहुॅचते–पहुॅचते अमूर्त एवं सूक्ष्म ज्ञान को ग्रहण कर सके एवं परिवर्तित परिवेश के अन्तर्गत अनुसंधान कार्यो के माध्यम से उपयोगी वातावरण तैयार कर सके।

(iv) समीक्षात्मक विचार

महामना जी द्वारा प्रतिपादित पाठ्यक्रम में आदर्शवादी शिक्षा दर्शन एवं प्रयोगवादी शिक्षा दर्शन का संयुक्त प्रभाव परिलक्षित होता है वे नयन मूंद कर किसी सत्य को स्वीकार नहीं करते थे, वरन् उसकी सात्विकता को परख कर उस पर विश्वास किया करते थे जैसे न केवल अध्यात्मवाद और प्राचीन भारतीय संस्कृति पर उन्होंने बल दिया, वरन् तात्कालिक परिस्थितियों के अनुरूप वास्तविकता के कठोर धरातल पर दृढ़ता से टिकने के लिए भौतिक विकास को भी शिक्षा का महत्वपूर्ण लक्ष्य माना। बेकारी की समस्या को देखते हुए औधोगिक शिक्षा पर बल दिया। जिसमें हस्तशिल्प के साथ ही तकनीकी शिक्षा पर भी जोर दिया।

---

(1) हिन्दी साहित्य सम्मेलन– अध्यक्षीय भाषण सन् 1919

महामना जी का शिक्षा दर्शन मानवतावाद से भी प्रभावित था उन्होंनें न केवल व्यक्ति विशेष या देश विशेष का उत्थान करना चाहा, वरन् वसुधैव्र कटुम्बकम् के लक्ष्य की प्राप्ति का साधन शिक्षा को माना। अतः शोधकर्ता को महामना जी द्वारा प्रतिप्रादित पाठ्यक्रम आदर्शवादी प्रयोगवादी तथा मानवतावादी दर्शनों से प्रभावित होता हुआ दृष्टिगोचर होता है।

(ग) <u>शिक्षण विधि</u>– शिक्षण एक कला है। अन्य कलाओं की भांति इस कला में प्रारंगत होने के लिए भी विशेष प्रकार के प्रयत्न करने की आवश्यकता है। एक शिक्षा को जो इस कला को सीखना चाहता है सावधानी तथा धैर्य से काम लेना चाहिए। बालकों को शिक्षा प्रदान करने से पहले उन्हें उत्तम शिक्षा किस प्रकार प्रदान की जा सकती है। यह जानना आवश्यक है इसके लिए उसे शिक्षण सिद्धान्तों को समझना आवश्यक है।

रूसो, फ्रोबेल, हरवर्ट, स्पेन्सर , डी0वी0गांधी आदि विचारकों ने इन पुरातन शैक्षणिक विचारों में क्रान्ति ला द्री इन्होने शिक्षा में नवीन सिद्धान्तों की प्रतिपादन किया एवं नवीन शिक्षण विधियों का निरूपण किया। इन्होने बताया कि शिक्षण की प्रकिया में बालक एक सकिय कार्यकर्ता है। बहुत सी बाते वह स्वंय सीख लेता है। शिक्षक तो मात्र एक सहायक और पथ प्रदर्शक के रूप में होता है इन्ही या इसी प्रकार के अन्य विचारों के आधार पर कुछ शिक्षण विधियों का विकास हुआ उनमे से प्रमुख है किण्डर गार्डेन, मान्टेसरी ,डाल्टन, प्रोसेक्तविधि, बेसिक शिक्षा आदि। इन विधियों का विकास कुछ प्रमुख सिद्धान्तों के आधार पर किया गया है ये प्रमुख रूप से निम्न प्रकार है।

1. रूचि को जागृत करने का सिद्धान्त

2. प्रेरणा का सिद्वान्त

3. किया द्वारा सीखने का सिद्धान्त

4. जीवन से सम्बन्ध जोड़ने का सिद्धान्त

शिक्षण विधियों के निर्धारण मे सिद्धान्तों के साथ ही साथ कुछ विधि सूत्र भी महत्वपूर्ण भूमिका रखते है। ये विधि सूत्र इस प्रकार है।

1. ज्ञात से अज्ञात की ओर
2. सहज से कठिन की ओर
3. अनिश्चित से निश्चित की ओर
4. स्थूल से सूक्ष्म की ओर
5. विशिष्ट से सामान्य की ओर
6. पूर्ण से अंश की ओर
7. अनुभव से तर्क की ओर
8. मनोवैज्ञानिक कम में चलो।

(i) <u>आगमन एवं निगमन विधि</u>– आगमन एवं निगमन विधि एक दूसरे की पूरक है। आगमन से नियम की खोज और सत्यता की परीक्षा निगमन विधि से की जाती है। इनका प्रयोग एक साथ किया जाता है महामना के अनुसार– "विधार्थी को उन कार्यो को छोड़ना चाहिए जो उसके स्वार्थ और विद्या अध्ययन में विध्न डालते हो, किन्तु दशा विशेष में जब कोई भारी विपत्ति आ पड़े कि उसके हटाने के लिए तुरन्त उधोग करना पड़े, तो विद्यार्थी को अपना काम छोड़कर विपित्त निवारण का प्रयास करना होगा।" [1]

---

(1) मालवीय पी0के0– (मालवीय जी– जीवन पर झलकियां)

(ii) मनोवैज्ञानिक शिक्षण विधि– भारतवासियों के ह्दय में देश प्रेम की भावना, शिक्षा के माध्यम से प्रस्फुटित करके उन्होनें जनजागरण के कठोर कार्य को सहजता के साथ पूरा किया। चूंकि महामना जी ने मनोवैज्ञानिक के सिद्धान्तों का गहनतार के साथ अध्ययन किया था अतः उन्होंने प्रारम्भिक स्तर पर ही ठोस एवं चारितिक उन्नयन की शिक्षा की अवधारणा की। उन्होंने अपनी शिक्षण पद्धति में सिद्धान्तों के स्थान पर व्यवहार को अधिक महत्व प्रदान किया। उन्होंने कहा कि मनोविज्ञान के सिद्धान्तों पर आधारित कोई भी शिक्षण प्रणाली सुगमत से अपने निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्तिकर सकती है।

पिल्सवरी के अनुसार– " मनोविज्ञान मानव व्यवहार का विज्ञान है।" (1) इसी सिद्धान्त के आधार पर महामना जी ने कहा कि शिक्षा वही है जो मानव व्यव्रहार में परिवर्तन उत्पन्न कर दें और शिक्षा को मनोवैज्ञानिक परिपेक्ष्य में रखकर जीवन के यर्थाथ आदशो की प्राप्ति सहज ही करा दें।

अतः परम्परागत शिक्षण प्रणाली को मनोवैज्ञानिक ढंग से मनोविज्ञान से जोड़कर पुरातनता और अर्वाचीनता में सामंजस्य स्थापित करना ही महामना जी की शिक्षा प्रणाली का मूल आधार था, इसी आधार पर महामना जी ने अपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को " आधुनिक युग का गुरूकुल" कहा है।

(iii) रचनात्मकता को प्रोत्साहन– महामना जी शिक्षा द्वारा प्राप्त पुस्तकीय ज्ञान को पूरा नहीं समझते थे। उनके अनुसार काल की आकांक्षा को ध्यान मे रखते हुए महात्मा गांधी की बुनियादी शिक्षण पद्धति को अपनाकर ही राष्ट्र का कल्याण सम्भव है। उन्होनें कहा कि–

---

(1) पिल्सवरी– भटनागर सुदेश शिक्षा मनोविज्ञान पृष्ठ–5

" यदि शिक्षा द्वारा व्यक्ति की रचनात्मकता को प्रोत्साहन नहीं मिलता तो वह शिक्षा व्यर्थ है। इस विधि से छात्रों में आत्म बल का विकास होगा और वह अपने पैरो पर खड़ा होना सीख सकेगा। [1]

महामना जी के अनुसार प्रत्येक जिला, कमिश्नरी पर औधोगिक शिक्षण संस्थाए एवं औधोगिक महाविद्यालय भी खोले जाएं इससे रचनात्मकता को प्रोत्साहन मिलेगा। इसीएि महामना जी को रचनात्मक शिक्षण प;ति का प्रबल समर्थक कहा जात सकता है महामना ज्री बालक को अपने पैरो पर खड़ा करके उसे तथा उसके माध्यम से राष्ट्र को स्वालम्बी बनाना चाहते थे।

(iv) <u>सीखने का अवसर प्रदान करना</u>– सीखना एक जन्मजाति प्रवृत्ति है हर प्राणी हर समय कुछ न कुछ सीखता रहता है अतः माता–पिता एवं विद्यालय के साथ ही समाज को ऐसे अवसर प्रदान करेने चाहिए कि बालक प्रतिपल कुछ न कुछ सीखता रहे।

महामना जी शिक्षा को व्यवहारिक एवं रचनात्मक स्वरूप प्रदान करके सभी छात्रों को सीखने के अधिकाधिक समय अवसर प्रदान करना चाहते थे ताकि बालक अनुभवों के आधार पर परिवर्तन शील समाजिक परिवेश के साथ उपयुक्त अनुकूलन एवं समायोजन कर सके, क्योंकि सीखने की प्रक्रिया जितनी सबल होगी, व्यक्ति उतना ही अपने व्यक्तित्व को उत्कृष्ट बना सकेगा।

(v) <u>भाषा शिक्षण विधि</u>– भाषा ही मानव जाति का ऐसा अलंकार है जो उसे अन्य प्राणली जगत से पृथकता प्रदान करता है भाषा के वाहन के द्वारा हमारी संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित की जाता है। राष्ट्रीय चेतना के विकास में

---

(1) प्रान्तीय कॉसिल में भाषण– सन् 1907

भाषा महत्वपूर्ण भूमिका रखती है। भाषा को हम ज्ञान की "कुन्जी" कह सकते है। भाषा के अभाव में हम कुछ नहीं सीख सकते। इसलिए मातृभाषा शिक्षण पर विशेष बल देते है।

मातृभाषा के महत्व को स्पष्ट करते हुए थोमस डेविस ने कहा कि " जो भाषा व्यक्ति के साथ ही विकसित होती है । वह उसके शारीरिक अंगो, उसकी जलवायु, उसके व्यवहार तथा उसकी मिट्टी के साथ ऐसी समाहित होती है कि उसके अभाव में अन्य किसी भाषा के द्वारा स्वाभाविक रूप में तथा सुन्दर रूप में वह अपने विचारों की अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है। [1]

(vi) <u>क्रियात्मक शिक्षण विधि</u>– महामना जी क्रियाशीलता को मानव जीवन के उन्नयन के लिए महत्वपूर्ण मानते थे उनकी धारणा थी कि वास्तविक क्रियाओं एवं कृषि सम्बन्धी कार्यो के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आकर ही बालक सही ज्ञान प्राप्त कर सकते है क्योंकि यह ज्ञान स्वः अनुभव एवं स्वः किया द्वारा प्राप्त होगा? महामना जी की विचार धारा व्यवहारिक एवं कार्योनमुखी थी। उनका विश्वास था कि क्रियात्मकता अथवा करक सीखने से आत्मविश्वास जागृत होता है। इस प्रकार से अर्जित ज्ञान का प्रभाव स्थायी होता है। इसलिए उन्होनें अपने विश्वविद्यालयों में प्रयोगशालाओं का निर्माण कराया ताकि छात्र प्रयोगों के माध्यम से कक्षा में सीखी बातों की सत्यता को जांच सके।

(vii) <u>साहित्य एवं ललितकलाओं का शिक्षण</u>– विश्वविद्यालय में शुष्क बौद्धिक विकास की शिक्षा के साथ ही महामना जी ने सौन्दर्य एवं आनन्दमयी ललितकलाओं की

---

(1) थोमस डेविस– लंगुएज सम एजेशन्स फार टीचर्स आफ इंग्लिस एण्ड बदर्स (शिक्षा मंत्रालय पत्रिका संख्या–26) पृष्ठ–41

शिक्षा की भी व्यवस्था की थी क्योंकि वे ललितकलाओं का जीवन का अभिन्न अंग मानते थे। इन्हें स्वंय भी संगीत, काव्य आदि से विशेश लगाव था। ललितकलाओं की शिक्षण विधि पुस्तकीय ज्ञान के साथ ही प्रयोगिक ज्ञान से भी मुक्त थी। इसके लिए विश्वविद्यालय में अलग–अलग कक्षों की व्यवस्था की गयी थी।

(viii) <u>वैज्ञानिक विधि</u>– महामना जी की धारण थी– वैज्ञानिक विधि परिवर्तन की मूल है। समसामायिक, राजनीति, धर्म और विज्ञान आदि विषयों पर निरन्तर तक–वितर्क एवं वाद–विवाद चलते रहना चाहिए। वे मानते है कि इससे छात्रों में वैज्ञानिक भावना का ज्ञान होगा। वे तर्क के आधार ही किसी बात की सत्यता को स्वीकार करेंगें। इसके लिए छात्र को निष्क्रिय होने के स्थान पर सक्रिय होना चाहिए। ताकि वह ज्ञान की सत्यता को मूल्यांकित कर सके। वैज्ञानिक विधि द्वारा महामना जी नवीन समाज जी की संरचना सम्भव मानते थे। महामना जी शोध विधि को एक वैज्ञानिक विधि की संज्ञा प्रदान करते थे।

(ix) <u>स्वाध्याय एवं व्याख्यान विधि</u>– महामना जी के अनुसार उच्च स्तर पर व्याख्यान विधि के समर्थक थे किन्तु वे निम्न कक्षाओं मे व्याख्यान विधि का प्रयोग मानसिक अपरिपक्वता के कारण नहीं करना चाहते थे । वे वौद्धिक व्यायाम को भी अपनी शिक्षण विधि मे उपयुक्त स्थान देते थे। पुस्तकालय एवं प्रयोगशालाओं की उपयोगिता को वे स्वीकार करते थे। यही कारण है कि उन्होंने एशिया के विशालतम पुस्तकालयों मे से एक ही स्थापना अपने विश्वविद्यालय में की।

(x) <u>दृश्य श्रव्य साधनों का प्रयोग</u>– श्रव्य–दृश्य शिक्षण का मूल आधार मनोविज्ञान है। इसके अन्तर्गत मौखिक शब्दों के बजाय प्रदर्शनात्मक वस्तुओं पर अधिक बल दिया जाता है। इस प्रकार बालक श्रवणेन्द्रि के साथ ही स्पर्श एवं चच्छु इन्द्रियों द्वारा

भी ज्ञान प्राप्त करने लगता है जिसके परिणाम स्वरूप उसके लिए ज्ञान प्राप्त करना सुगम हो जाता है इस प्रकार प्राप्त ज्ञान अधिक स्थायी होता हे। इस सम्बन्ध में क्रो और क्रो ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है– " श्रव्य–दृश्य उपकरण सीखने वालों को व्यक्तियों ,घटनाओं ,वस्तुओं और धारणओं तथा प्रभाव सम्बन्धों के नियोजन अनुभवों से लाभ उठाने के अवसर देते है। [1]

इन्ही उपर्युक्त विचारों की सार्थकता को ध्यान में रखते हुए महामना जी भी शिक्षण विधि में दृश्य –श्रव्य साधनों का प्रयोग करने का सुझाव देते थे। उनका विचार था कि इन उपकरणों का प्रयोग प्रारम्भिक स्तर पर अधिक से अधिक किया जाना चाहिए। महामना जी निरीक्षण, भ्रमण एवं परिश्रम के साथ भी चलचित्र वीडियों , दूरदर्शन, रेडियों आदि को इतिहास, भूगोल तथा अन्य विषयों के शिक्षण का सशक्त माध्यम मानते थे।

(xi) <u>समीक्षात्मक विचार</u>– महामना जी की शिखण विधियों का सांगोपांग अध्ययन कर शोधकर्ता ने यह निष्कर्ष निकाला कि उनकी शिक्षण विधि राष्ट्रीय चेतना का जागरण करने वाली जीवकोपार्जन में सक्षम बनाने वाली आधुनिक प्रविधि पर अवलंकित, तकनीकी,अ ध्यात्मिक, राजनीतिक एवं औधोगिक शिक्षा का ज्ञान कराने वाली और आत्मबल का विकास करने वाली हैं महामना जी की शिक्षण विधि उनके युग की आकांक्षा के अनुरूप प्रगतिशील एवं आधुनिक है।

(घ) छात्र और अध्यापक–

एडम्स तथा जेम्स रास के ही समान महामना जी की भी यही धारणा थी कि शिक्षा प्रकिया छात्र तथा अध्यापक रूपी ध्रुवों के अभाव में सम्पादित नहीं हो

---

(1) क्रो एण्ड क्रो इन्ट्रोडेक्सन टू एजूकेशन पृष्ठ 425

सकती। इसलिए महामना जी ने छात्र को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है। उनकी भावी राजनैतिक तथा सामाजिक आकांक्षाओं का केन्द्र बिन्दु छात्र ही है। इस छात्र का समुचित मार्गदर्शन शिक्षण संस्थाओं में कुशल अध्यापकों द्वारा ही सम्भव है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में शोधकर्ता वैदिक काल से वर्तमान तक छात्र तथा अध्यापक की स्थिति का आकंलन करते हुए आधुनिक, शिक्षा जगत में महामना जी के विचारों को समझने का प्रयास करेगा।

(i) छात्र:– वैदिक काल में छात्रों को दायित्व सौपे गये कि वह गुरू के जगने से पूर्व जागे। प्रातः कालीन संख्या करें। वह सदैव गुरू स्थान से निचले स्थान पर ही आसन ग्रहण करें। गुरू तथा गुरूमाता को अपने मॉ–बॉप के समान आदर प्रदान करना। शिखा समाप्त कर गुरू त्यागने से पूर्व गुरू दक्षिण प्रदान करना।

बौद्धकाल में शिक्षा के प्रमुख केन्द्र भड रहे छात्रों को इसकाल में चोरी न करना, जीव हत्या न करना मादक वस्तुओं का प्रयोग न करना बिना दिये किसी वस्तु को ग्रहण न करना, सोना चॉदी और बहुमूल्य वसतुओं का दान मत लेना, इत्यादि शपथ को दुहरवाया जाता था और इस कारण में सभी वर्गो को शिक्षा का अधिकार था। सभी वर्ग के छात्रों को भोजन, वस्त्र, स्नान, भिक्षाटन अनुशासन का नियमानुसार पालन करना आवश्यक था।

मुस्लिम काल में छात्रों की शिक्षा पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया इसीलिए इसे अन्धकार युग की भी संज्ञा प्रदान की जाती है इस युग के पश्चात भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में आधुनिक युग का प्रार्दुभाव अग्रेंजी शासन के प्रादुभवि के साथ ही हुआ इस युग के शिक्षा के क्षेत्र में अनेकानेक परिवर्तन हुए।

आधुनिक काल में महामना जी ने खेलकूद और व्यायाम के माध्यम से छात्रों को शारीरिक रूप से स्वस्थ्य बनाना चाहते थे वे व्यायाम करते छात्रों को देखकर प्रसन्न होते थे। उनकी स्पष्ट धारण थी कि स्वस्थ्य शरीर में स्वास्थ्य मस्तिष्क रहता है।

महामना जी शिक्षा में छात्रों को महत्वपूर्ण मानते थे उनके विचार से शिक्षा प्रक्रिया छात्र के बिना चल ही नहीं सकती। वे छात्र को अनुशासन की निश्चित सीमाओं मे रखना चाहते थे। महामना जी का चिन्तन छात्रों के सम्बन्ध में बहुत ही व्यवहारवादी और यर्थाथवादी था वे यथार्थ की अवधारणा नहीं करना चाहते थे। वे अपनी प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता को भी नहीं छोडना चाहते थे इसलिए उनहोंने मध्य मार्ग अपनाते हुए अपने छात्र में प्राचीन तथा नवीन दोनो गुणों का समावेश कराना चाहा।

<u>अध्यापक</u>— महामना जी अपनी शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक को किसी एक काल या किसी एक वाद की सीमाओं में बांधने का प्रयास नहीं किया। महामना जी स्वंय में एक विशिष्ट व्यक्ति थे अतः उनका चिन्तन अपने प्रकार का ही था। वे शिक्षा में अध्यापक को आवश्यक पहले समझते थे उसे वे रथ का एक पहिया मानते थे जिसके अभाव में शिक्षा प्रक्रिया की कल्पना ही नहीं की जा सकती। जब वे अध्यापक को इतना महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते है तो वे निश्चित रूप से प्राचीन कालीन शिक्षक या आदर्शवादी शिक्षक की कल्पना करते है। किन्तु महामना जी तो एक व्यवहारवादी व्यक्ति के स्वामी थे अतः वे चाहते थे कि उनका अध्यापक केवल रूढ़ियों और आदर्शो से ही न जुड़ा रहे, वह यर्थाथ तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी अपनाएं ताकि वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों एंव समस्याओं का समाधान किया जा

सके। महामना जी अपने शिक्षक के सभी (वैदिक, बौद्ध और मुस्लिम काल) एवं सभी दर्शनों (आदर्शवाद, प्रकृतिवाद, प्रयोजवाद तथा यथार्थ वाद) के गुणों का समावेश करना चाहते थे ताकि शिक्षा जगत को पूर्ण अध्यापक प्राप्त हो सक। अन्य क्षेत्रों के समान ही शिक्षा के क्षेत्र में अध्यापक की स्थिति के सम्बन्ध में एक समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाना चाहते है। महामना जी की अपेक्षा है कि उनका अध्यापक प्राचीनता तथा आधुनिकता के गुणों से मुक्त हो। उसमें सदाचार, सचरित्रता , अध्यामिकता एवं धार्मिकता के साथ ही सामाजिकता , वैज्ञानिकता के गुणों का भी समावेश होना चाहिए। ऐसा अध्यापक ही आज की वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप छात्रों का विकास कर सकेगा। इस प्रकार से शोधकर्ता अनुभव करता है कि महाना जी अपने व्यक्तित्व एवं चिन्तन के अनुरूप ही शिक्षक के स्वयं की कल्पना करते है। महामना जी स्वंय ही प्राचीन सभ्यता एंव संस्कृति तथा आधुनिक चिन्तन से युक्त आदर्श शिक्षक थे उन्होंने अपने अन्दर गुरूकुल के गुरु एंव आधुनिक विज्ञान के अध्यापक को अपने अन्दर समाहित किया हुआ है।

(iii) <u>छात्र–अध्यापक सम्बन्ध</u>– महामना जी द्वारा प्रतिपादित शिक्षा व्यवस्था में गुरू शिष्य सम्बन्धों को बिना सम्पूर्ण शिक्षा के इतिहास के समझे, व्यक्त नहीं किया जा सकता है। वैदिक काल में गुरू और शिश्य सम्बनध बहुत मधुर थे, गुरू अपने शिष्य के प्रति पितृवत–व्यवहार करता था। ये दोनो संयुक्त रूप से ज्ञान को संरक्षित तथा विकसित करने का प्रयास करते तथा यह बताने की चेष्ठता करते कि ज्ञान का जीवन तथा आचरण मे क्या महत्व थे। पतंजलि के अनुसार शिष्य को छात्र अर्थात "छात्रा" की संज्ञा दी गयी हे जिसके नीचे छात्र को पूर्ण सुरक्षा प्राप्त होती थी छात्र को अपने कल्याण क लिए अध्यापक के साथ आत्मीयता स्थापित करनी होती है।

बौद्ध काल में भी गुरू शिष्य सम्बन्ध वैदिक काल ही के समान पवित्र एवं स्नेहपूर्ण थे। इन सम्बन्धों का मुख्य आधार परिस्पिरिक कर्तव्य था। छात्र अपने गुरू से पहले उठकर जल, दातून की व्यवस्था करता। शिक्षक के बैठने की व्यवस्था करता, उसके खान पान की व्यवस्था करता। ठीक इसी प्रकार से शिक्षक भी अपने छात्र के मानसिक, शारीरिक ,चारित्रिक एवं अध्यात्मिक विकास करने का भरसक चेष्टा करता। इसके अतिरिक्त वह छात्र अस्वस्थ होने पर उसकी देखभाल करना। इस प्रकार से छात्र और शिक्षक एक दूसरे के प्रति प्रेम, आदर और विश्वास की भावनाएं निहित थी।

मुस्लिम काल में इस क्षेत्र में कुछ गिरावटे हुई, मुस्लिम शासकों ने अपने गुरू का अनादर किया जैसे औरंगजेब ने, किन्तु सामान्य में ये सम्बन्ध अभी भी अच्छे थे। दोनो एक दूसरे का ध्यान रखते थे किन्तु आज वर्तमान शिक्षा में छात्र अध्यापक सम्बन्धों में निरन्तर गिरावट आती जा रही है।

महामना जी द्वारा प्रणीत शिक्षा प्रणाली में गुरू शिष्य सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हुए शोधकर्ता को उनकी यह पंक्ति यहां उद्धत करनी पड़ती है......................" काशी हिन्दू विश्वविद्यालय आधुनिक युग का गुरूकुल है।" इस पंक्ति के आधार पर गुरू शिष्य सम्बन्धों की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है। आधुनिक से तात्पर्य यहां वैज्ञानिक एवं भौतिक विकास से है। जबकि हम किसी अन्य देश या राष्ट्र से पिछड़े हुए न हो। दूसरा शब्द " गुरूकुल है। गुरूकुल प्रणाली हमारी प्राचीन शिक्षा का धोतक है। जब बालक गुरू आश्रम में जाकर अपने जीवन के प्रारम्भिक पच्चीस वर्षो तक ब्रह्मचर्य नियमों का पालन करते हुए अपनी भक्ति एवं रम के द्वारा गुरू को दक्षिणा देकर ज्ञानार्जन करता है । यहां गुरू शिष्य सम्बन्धों की बिना अनुभूति के

आधार पर ही सुखद कल्पना की जा सकती है । गुरू बालक का सबसे बड़ा हितैषी होता है और बालक के लिए गुरू की आज्ञा ही ब्रह्म आज्ञा है। इस प्रकार स्पष्ट है कि महामना जी की शिक्षा में निहित गुरू शिष्य सम्बन्ध आदर्श परक एवं सौहार्दपूर्ण है। महामना जी निश्चित रूप से प्राचीन तथा नवीन के बीच सेतुका कार्य करते है। वे सम्बन्धों की प्राचीन छवि को बनाएं रखते हुए उसे आधुनिक स्वरूप प्रदान करने का भरसक चेष्टा करते है जिसमें वे पूर्णतया सफली भूत हुए है।

(ड.) <u>अनुशासन</u>— शिक्षा के अंग के रूप में विद्यालय प्रबन्ध के क्षेत्र में महामना जी के अनुशासन समबन्धी विचारों का अवलोकन करना शोधकर्ता का लक्ष्य है इस सम्बन्ध में शिक्षा जगत की एतिहासिक एवं दर्शनिक पृष्ठ भूमि के परिपेक्ष्य में महामना जी के विचारों का अवलोकन करना होगा।

प्राचीन काल में भारतीय शिक्षा पूर्णतया स्वतंत्र थी। बौद्ध कालीन शिक्षा पर विशेष बल दिया जाता था छात्रों द्वारा फल—फूल पत्तियां तोड़ना, सम्पत्ति रखना, सार्वजनिक स्थानों पर तमाशा देखना, हानि प्रद खेलों में भाग लेना, शरीर को अलांकृत करना तथा झगड़ा करना आदि पूर्णतया निषिद्ध था। छात्रों को इस प्रकार के कार्यो का सम्पादित करने की स्वतंत्रता नहीं थी जो छात्र इस प्रकार के कार्यो में संलग्न पाये जाते उन्हें दण्डित किया जाता था।

मुस्लिम कालीन भारतीय शिक्षा में कठोर अनुशासन की प्रथा, प्रचलित थी उसमें स्वतंत्रता का अभाव था पाठ न याद होने पर छात्रों को वेत, कोड़े,घूंसे, लात, थप्पड़ आदि से प्रताड़ित किया जाता था कोई बड़ा अपराध करने पर भीषण यातनाऐं प्रदान की जाती थी। इस प्रकार अनुशासन प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक युग की दहलीज तक पहुॅचते—पहुॅचते कठोर से कठोरतम् हो गया और छात्र की स्वतंत्रता

द्रिन प्रतिदिन कम होती चली गयी।

अनुशासन की प्रक्रिया दर्शनिक दृष्टिकोण से दोनो (स्वतंत्रता और अनुशासन) शिक्षा के क्षेत्र में एक दूसरे के पूरक है। वे एक ही सिक्के के दो पहलू है। एक के अभाव में दूसरा निरर्थक प्रतीत होता है। अतः दोनो ही बालक के व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक है।

आदर्शवाद में अनुशासन बालक को उपर्युक्त शिक्षा के लिए आवश्यक समझा जाता है अर्थात बालक को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करने के पक्ष में नहीं है वे छात्र को नियमित रखना चहाते है। अनुशासन के माध्यम से आत्मानुभूति सम्भव है तथा इसी से अध्यात्मिक उपलब्धि हो सकती है।

आदर्शवादी चिन्तन से विपरीति प्रकृतिवादी शिक्षा के क्षेत्र में अनुशासन को लेशमात्र भी महत्व नहीं देता वह तो छात्र को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करना चाहता है। उसके अनुसार बालक सामाजिक बन्धनों के कारण न तो ज्ञान प्राप्त कर सकता है और न ही उसका स्वाभाविक विकास ही हो सकता है। अतः प्राकृतिवाद बालक की शिक्षा को प्रकृति की गोद में चलाना चाहता है जहां सर्वत्र स्वतंत्रता एवं स्वच्छन्दता है। प्रकृति वादियों के अनुसार प्रकृति स्वंय ही अनुभवों के माध्यम से बालकों को सब कुछ सिखा देगी, उस पर नियंत्रण की तनिक भी आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार आग में बार–बार अंगुली डालने से उसे अग्नि की उष्णता एवं तपिश का ज्ञान हो जावेगा और फिर भविष्य में उसमें उंगुली नहीं डालेगा।

उपर्युक्त दोनो ही विचार धाराओं से हटकर प्रयोजन वादी विचारकों का मत है कि शिक्षा जब बालक की आवश्यकताओं तथा समस्याओं को ध्यान में रखकर उनके समाधान के लिए व्यवस्थित की जायेगी। तो वहां अनुशासनहीनता की समस्या

उत्पन्न ही नहीं होगी। प्रयोजनवादी वैयक्तिक अनुशासन के पक्षधर नहीं है। वे छात्रों को स्वतंत्रता प्रदान करना चाहते है। ताकि उनका स्वाभाविक सामजस्यपूर्ण एवं सर्वागीण विकास हो सके।

शोधकर्ता जब महामना जी के स्वतंत्रता तथा अनुशासन सम्बन्धी विचारां को भारतीय शिक्षा के परिवेश में एतिहासिक एवं दार्शनिक दृष्टि से परखता है तो पाता है कि महामना जी स्वतंत्रता के पक्षधर थे। वे परतंत्रता को व्यक्ति का सबसे बड़ा कष्ट मानते थे और व्यक्ति को कायर की संज्ञा देते थे। उनकी आस्था " पराधीन सपनहु सुख नाही " में थी महामना जी स्वतंत्रता के समर्थक थे किन्तु अनुशासन से युक्त स्वतंत्रता थे। वे छात्रों को नियन्त्रित स्वतंत्रता प्रदान करने के पक्ष में थे महामना जी विद्यालयों में दमनात्मक नीतियों का विरोध करते थे, वे छात्रों पर अनावश्यक प्रबन्ध लगाने के विरोधी थे। उन्होंने अप्रनी शिक्षा व्यवस्था में छात्रों को अपने विचार व्यक्त करने एवं बोलने की स्वतंत्रता प्रदान की। उनकी धारणा थी कि बिना स्वतंत्रता के बालक का स्वाभाविक विकास नहीं हो सकता।

महामना जी के अनुसार अनुशासन एक प्रकार की मानसिक आदत हे, जो शिक्षक एवं शिक्षार्थी के पारस्परिक स्नेहिल सम्बन्धों पर आधारित है। महामना जी स्वतंत्रता एवं अनुशासन के महत्व को आदर्शवादी विचार धारा के आधार पर मानते है महामना जी की हार्दिक आकांक्षा थी कि शिक्षा जगत में बालक का दमन एवं शोषण नहीं होना चाहिए उसे अपने विकास हेतु अवसर मिलने चाहिए ताकि अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए स्वतंत्रता मिलनी चाहिए इसी से बालक का स्वाभाविक विकास सम्भव होगा।

इस प्रकार शोधकर्ता देखता है कि महामना जी के क्षेत्र में स्वतंत्रता और अनुशासन पर समान रूप से बल देते है वे चाहते थे कि छात्रों को स्वतंत्रता प्रदान की जाये किन्तु वह अनुशासन की सीमाओं का उल्लधंन न करें। निश्चित रूप से महामना जी मर्यादित स्वतंत्रता के पक्षधर थे।

(i) <u>समीक्षात्मक विचार–</u>

महामना जी अपने प्रयासो के माध्यम से भारत के अन्दर एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था विकसित करना चाहते थे, जिसके द्वारा ऐसे छात्र तैयार होकर निकले जो तत्कालीन भारत की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। वे देश को परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त करा सके। इसलिए वे निर्भीक देशभक्त, कुशल एवं योग्य छात्रों का निर्माण करना चाहते थे। वे न तो आदर्शवाद के समान शिक्षक को प्राथमिकता प्रदान करते थे और न ही प्रकृतिवाद के समान छात्र को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करना चाहते थे।

महामना जी शिक्षा जगत में छात्र को निरंकुश नहीं बनाना चाहते थे , साथ ही वे यह भी नहीं चाहते थे कि छात्र बाह्य दबाव में रहते हुए अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व को ही कुंठित कर लें। वे चाहते थे कि उनकी शिक्षा के माध्यम से आत्मविश्वासी तथा स्वालम्बी छात्रों का विकास हो, वे छात्रों का आत्मिक एवं अध्यात्मिक विकास भी विद्यालय के स्वतंत्र वातावरण में ही करना चाहते थे। उनकी धारणा थी कि बिना आत्मानुशासन के कोई छात्र अच्छा ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। अतः छात्र के लिए अनुशासित रहना परमावश्यक है।

अध्याय षष्ठम

पं0दीनदयाल उपाध्याय तथा महामना मदन मोहन मालवीय के शिक्षा दर्शन की तुलना :–

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ के कार्यकर्ता थे उनके जीवन दर्शन मे संघ का ही प्रभाव दृष्टिगोचर है। 1937 में जब वह स्वंय सेवक बने उस समय स्वतंत्रता आन्दोलन जोरो पर था अनेक क्रान्तिकारी महापुरूषों ने भारतीय समाज को स्वतंत्रता के आन्दोलन में सहभागी बनाने का कार्य किया है।

उपाध्याय जी का सम्पूर्ण जीवन चिन्तन उनकी शिक्षा उनके मानवीय दृष्टिकोण की ही परिर्णित है। एकात्मक मानव दर्शन में एकात्मक मानव का पूर्ण मानव का संकलित विचार हुआ है भारतीय संस्कृति के अनुसार मनुष्य शरीर मन, बृद्धि और आत्मा का समुच्चय है अतः उसकी सभी प्रकार की क्षुधाओं को तृप्त करने के लिए चार पुरुषार्थी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की व्यवस्था की गयी है। इन्हीं चारो पुरुषार्थी से युक्त मानव ही उपाध्याय जी की शिक्षा का केन्द्र बिन्दु है। मानव के बीच मधुर सम्बन्धों तथा व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के सभी अंगों का विचार उपाध्याय जी ने अपने चिन्तन में किया है। शोधकर्ता ने पंडित दीनदयाल उपाध्याय के चिन्तन को वर्गीकृत करने के उपरान्त पाया है कि श्री उपाध्याय जी ने सनातन तत्वों के साथ, राष्ट्रीय तत्वों ,सामाजिक तत्वों तथा धर्म के तत्वों को विस्तृत विवेचना की है। उपाध्याय जी ने धर्म के तत्वों की विवेचना करते हुए उनको सनातन एवं सर्वव्यापी तथा देशकाल और परिस्थिति सापेक्ष बताया है तात्विक आधार पर बने नियमों को धार्मिक बताते हुए कहा है–

" नियमों की सम्पूर्ण संहिता और उसके तात्विक आधार का नाम धर्म है।"[1]

महामना जी का शिक्षा दर्शन आदर्शवादी मान्याताओं पर आधारित है। उन्होंने सदाचरण, स्वानुशासन, उच्च आदर्शों एवं साहित्य, कला धर्म, दर्शन आदि के माध्यम से प्राचीन संस्कृति के अध्ययन को अपनी शिक्षा में स्थान देकर आदर्शवाद को अपनाया। तत्विक तथ्यों के ईश्वर, आत्मा, ब्रह्म तथा जीव आदि की व्याख्या धर्म और दर्शन के माध्यम से ग्रहण करके शिक्षा में जीवन तथ्यों की स्थापना की है।

शिक्षा के ज्ञानमीमांसीय दृष्टिकोण में उपाध्याय जी ने मनुष्य के लिए करने योग्य चार प्रकार के पुरूषार्थी का वर्णन किया है धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन पुरूषार्थी में उन्होंने कर्म को आधार भूत पुरूषार्थ माना है। उनका कहना भी है कि धर्म हमारा प्राण है। धर्म गया तो प्राण गये। धर्म पुरूषार्थ का उन्होंने विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए कहा है कि बृद्धि, राष्ट्र की परम्परायें, यज्ञभाव और ज्ञान या शिक्षा इन चार समुच्चय धर्म पुरूषार्थ है। इस प्रकार उन्होंने ज्ञान को धर्म पुरूषार्थ का अंग माना है अतएव उन्होंने कहा है कि हमारा धर्म है नियमों का पालन करना और नियम भी जो मनमाने न बने हो। ज्ञानपूर्वक और पूर्वानुभव के आधार पर निर्मित हो। अतः उपाध्याय जी ने अपनी प्रस्तुत में ज्ञानयीमांशा दृष्टिकोण को अपनाया है।

महामना जी के अन्तर्गत ज्ञानमीमांसीय दृष्टिकोण के अन्तर्गत ज्ञान की व्रिवेचना की जाती है और ज्ञान के आधार पर ही उसकी सत्ता उत्पत्ति तथा कार्य के सम्बन्ध में विश्लेषण किया जाता है । वे प्रत्येक कार्य को ज्ञानपूर्ण तक विर्तक के पश्चात् कार्य रूप में परिर्णित करने की शिक्षा देते थे। वे बिना विचारित किये किसी

---

(1) एकात्मक मानव दर्शन-   पं0दीनदयाल उपाध्याय

कार्य को सम्पादित करने के पक्षधर नहीं थे। महामना जी भौतिक विकास के प्रति पूर्णरूप से जागरूक थे।

(क) आदर्शवादी दृष्टिकोण

उपाध्याय जी ने कहा यह अत्यन्त प्राचीनतम् विचारधारा है। जो केवल विचारों को ही सही मानती है विचारों के अलावा या विचारों से परे कुछ भी सत्य नहीं है भौतिक संसार की अपेक्षा आध्यात्मिक संसार को अधिक महत्व देती है। भौतिक जगत को नश्वर परिवर्तनशील एवं असत्य मानती है।

भारतीय आदर्शवाद का लक्ष्य है "ब्रह्म" का साक्षात्कार अर्थात "मोक्ष" है तथा ब्रह्म के साक्षात्कार का मार्ग है आत्मज्ञान। उपाध्याय जी ने मानव को सर्वश्रेष्ठ कृति एवं आत्मज्ञान को सवोत्कृष्ट ज्ञान तथा ब्रह्म के साक्षात्मकार या मोक्ष को चरम उद्‌देश्य माना है।

उपाध्याय जी अपनी शैक्षिक विचार धारा में भौतिकता की अपेक्षा कृत अध्यात्मिकता को अधिक महत्व देते है। मानव के अन्दर दया, ममता, बन्धुता और उदारता जैसे सर्वश्रेष्ठ गुण आध्यात्मिकता के द्वारा ही उत्पन्न होते है। मानव के लिए प्राप्त मूल्य उन्होंने सत्यम् शिवम् सुन्दरम् बताया है। स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्र नाथ टैगोर ,महर्षि अरविन्द और लोकमान्य तिलक प्ररमपूज्य डा० केशवराव , माधवराय, सदाशिवराव गोलवलकर "गुरुजी" जैसे आदर्शवादी विचारक उनके आदर्श है।

महामना जी एक आदर्शवादी विचारक थे इसी कारण उनके जीवन के प्रत्येक पहलू में आदर्शवाद की झलक स्पष्ट रूप से प्रतिविम्बम्बित होती प्रतीत होती है । शिक्षा क्रे क्षेत्र में आदर्शवादी शिक्षा दर्शन से प्रभावित है क्योंकि दर्शन य्रर्थाथता के स्वरूप का तार्मिक ज्ञान है शिक्षा तो दर्शन का गतिशील पक्ष है, साधन है, किन्तु

न केवल शिक्षा, अपितु व्यक्ति भी समाज की प्रत्येक क्रिया के प्रति कोई न कोई दर्शन अवश्य रखता है व्यक्ति के धर्म, कर्म एवं आस्थाएं सभी दर्शन से प्रभावित होते है।

आदर्शवाद मानव के अध्यात्मिक पक्ष पर बल देता है आदर्शो की प्राप्ति को अपना परम लक्ष्य मानता है। उन्होंने भारतीय अध्यात्मिक संस्कृति को विश्व की संस्कृति में सर्वोपरि स्थान दिया। भारतीय संस्कृति की आत्मा की अनवरता को स्वीकार कर उसे अनन्त एवं शाश्वत् रूप प्रदान किया। महामना जी भारतीय संस्कृति को अखण्ड एवं सुरक्षित बनाएं रखना चाहते थे। और इस भावना क बल पर विश्व कल्याण के इच्छुक थे वे संमुचित विचारधारा के विरोधी थे और मानव कल्याण के आदर्शो के सम्प्रेषक थे।

महामना जी की शिक्षा परिवर्तन शील दृष्टिगोचर होती है जो युगानुकूल या युगानुरूप अपने स्वरूप को परिवर्तित कर लेती है। महामना जी का शैक्षिक सिद्धान्त वसुधैव कुटम्बकम् की पवित्र भावना से प्लावित एवं परिवर्तनकारी भावना से ओतप्रोत थे। इसी कारण वे कभी भी जीर्णा, शिथिल एवं निस्प्रभावी नहीं हो सकेगें।

प्रयोजनवादी दृष्टिकोण

राष्ट्र का कल्याण एवं राष्ट् की स्वतंत्रता उपाध्याय जी का मुख्य प्रयोजन है। अतः इस प्रयोजन को पूरा करने वाले असत्य को भी वे सत्य से बड़ा मानते है उनके अनुसार–

" अपने राष्ट् का कल्याण और उसकी स्वतंत्रता ही सबसे बड़ा सत्य है।

राष्ट्र के कल्याण और राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए कुछ भी करने के लिए उद्यत रहना उनके प्रयोजनवादी होने के ही लक्ष्य है।

पण्डित दीनदयाल भी रूढ़ियों, परम्पराओं एवं अन्धविश्वासों के विरूद्ध है। अपने देश में प्रचलित रूढ़ियों को मिटाने के साथ साथ विदेशी रूढ़ियों के अन्धानुकरण पर उन्होंने आश्चर्य प्रकट किया है तथा इस दृष्टिकोण को अविवेकपूर्ण माना है। व्यक्ति और समाज दोनो के परस्पर सम्बन्ध को ही उन्होंने संस्कृति की संज्ञा दी है। कोई किताबी ज्ञान को उन्होंने शिक्षा नहीं शिक्षा से उनका तात्पर्य है। मानव का सर्वांगणी विकास एवं देवतत्व की प्राप्ति है।

उपाध्याय जी ने राष्ट्रीय प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए शिक्षा को साधन के रूप में स्वीकार किया है। छोटे मोटे प्रयोजन के लिए सिद्धान्तों से समझौता करना उनकी आदत नही है। वरन् उच्च प्रयोजन जेसे राष्ट् की स्वतंत्रता एवं राष्ट् के कल्याण के लिए वे कुछ भी करने के समर्थक है । अस्तु उपाध्याय जी आदर्शवादी विचारक ही नहीं किन्तु प्रयोजन वादी विचार धारा के आदर्श प्रस्तोता भी है।

महामना ने अनित्य एवं सांसारिक सत्ता को सत्य मानने वाली विचारधारा हमारे समक्ष प्रयोगवादी के रूप में आती है यह भौतिक विकास को ही अपना लक्ष्य मानती है। प्रयोगावाद में शिक्षा उपयोगिता के रूप में हमारे समक्ष आती है प्रयोग वादी नित्य बदलते युग के मानव जीवन के मूल्यों में परिवर्तन के साथ ही साथ मान्यताओं के परिवर्तन पर बल देते है महामना जी की शिक्षा प्रयोगवाद के आधार पर पूर्णतया प्रयोजनवादी दिखाई पड़ती है। वह अपने लक्ष्य प्राप्ति हेतु अपने सिद्धान्तों को शीध्र ही परिवर्तित कर लेते है। वे मानव अनुभवों के आधार पर ही किसी ज्ञान की सत्यता एवं असत्यता स्वीकार करते है। मानव का अनुभव ही भला, बुरा, संगत, असंगत एवं न्याय, अन्याय, गुण या अवगुण को सिद्ध करता है प्रयोगवाद सत्य का मापदण्ड है।

महामना जी की शिक्षा का आधार क्रियाशीलता है। क्रियाशीलता से अनुभव एवं उसके पश्चात मस्तिष्क में विचार उत्पन्न होते है। सिद्धान्तों की अपेक्षा प्रयोजनवादी व्यवहार पर अधिक बल देते है और अपनी शिक्षा को व्यवहारिक बनाते है प्रयोगवाद का उद्देश्य शिक्षा में नवीन मूल्यों का निर्माण करना है। मालवीय शिक्षा सिद्धान्तों एव व्यवहार के दो सृदृढ़ स्तम्भों पर आधारित है। महामना जी का शिक्षा दर्शन उन दोनो ही दर्शनों के आधार पर प्राचीन एवं अर्वाचीन का अद्भुत संगम है।

(ग) उपाध्याय जी के शिक्षा दर्शन के सिद्धान्त

स्वतंत्रता के पश्चात् भी हमारे देश के वैचारिक परावलम्बिता का वातवारण व्याप्त था यह स्थिति पण्डित जी को असत्य थी। इसी पीड़ा ने विशेषकर उनके चिन्तन को जन्म दिया सिद्धान्त और नीति प्रलेख में उन्होंने लिखा है

" वर्तमान परिस्थिति का सबसे प्रमुख कारण राष्ट्र जीवन की आत्मा का साक्षात्कार न करते हुए उसके ऊपर विदेशी और विजातीय विचार धाराओं तथा जीवन मूल्यों को थोपने का प्रश्न है। शीध्र उन्नति की आतुरता में दूसरे देशों का अन्धानुकरण करने और स्व के तिरस्कार की वृत्ति पैदा हुई है इससे राष्ट्र मानस में कुण्ठा घर कर गयी है। [1]

पण्डित जी ने अपने विचार दर्शन के प्रतिपादन में संस्क1ृति परक परम्परागत प्रत्ययों का प्रयोग करके उन्हें आधुनिकता सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है इसी सन्दर्भ में उन्हें मौलिक दर्शनिक की पदवी प्राप्त हुई है। उपाध्याय जी दर्शनिक प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे लेकिन उनके दर्शन एकात्मक मानववाद में कम बद्धता का अभाव अवश्य है

---

(1) भारतीय जनसंघ सिद्धान्त और नीति पृष्ठ 3 एवं 4

क्योंकि देशभ्रमण और संगठन के कार्य में उनका अधिकतर समय व्यतीत होता था। व्यष्टि, समिष्ट, संस्कृति, चिति, विराठ , राष्ट्र सृष्टि, परमेष्टि, कर्म सुख और तचुर्पुषार्थ ही वे प्रव्यय है जिनके आधार पर उन्होंने अपने दर्शन एकात्ममानववाद का भव्य महल खड़ा किया है। इनके सिद्धान्त निम्न है–

1.	व्यक्ति वैयक्तिकता का सिद्धान्त–	स्वंय का सुधार ही समाज का सबसे बड़ा सुधार है।
2.	समिष्ट सामाजिक कुशलता का– सिद्धान्त	सामाजिक भावना का अधिकाधिक विकास
3.	संस्कृति ,सांस्कृतिक समृद्धता का सिद्धान्त–	राष्ट्रीय संस्कृति की अभिव्यक्ति हो सके तथा उनका संरक्षण और संवर्धन करके नवनिर्माण की दिशा में बढ़ा जा सके।
4.	चिति राष्ट्रीय चैन्तन्य निर्माण का सिद्धान्त–	'चिति' सवोत्कृष्ट सुख जिसके समक्ष अन्य बातों को फीका लगना।
5.	विराट–विराट के जागरण का सिद्धान्त–	राष्ट् के विराट को जागृत करना।
6.	राष्ट्–विशुद्ध राष्ट् भाव के जागरण का सिद्धान्त–	बिना शुद्ध राष्ट्र भाव के कोई राष्ट्र प्रगति की कौन कहे, अपनी स्वतत्रंता भी टिकाये नहीं रख सकता।"
7.	सृष्टि–परमेष्टि–एकात्मता का सिद्धान्त–	जो कुछ भी संसार में दिखाई देता है वह सब ईश्वर से परिव्याप्त है।

8.	धर्म—धार्मिक शिक्षा का सिद्धान्त—	"धर्म मनुष्य के अन्दर ऐसी प्रेरणा,प्रवृत्ति एवं विधि व्यवस्था है जिसका लक्ष्य स्पष्ट रूप से भगवान ही है। (1)
9.	सुख—समग्र एवं एकात्म सुख का सिद्धान्त—	जगत सुख के साथ एकात्म सुख का निर्माण।
10.	चतुपुरुषार्थ का सिद्धान्त—	धर्म, अर्थ काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ है।

(घ) महामना जी के शिक्षा दर्शन के मूलभूत सिद्धान्त

महामना जी के शिक्षा दर्शन के आधार पर मूलभूत सिद्धान्तों को निम्न प्रकार प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा है।

1. बालक में देशप्रेम की भावना जागृत करना तथा देश का अभ्युदय करना।
2. स्वालम्बन एवं आत्म विश्वास की भावना का विकास।
3. भारतीय मूल्यों की प्राप्ति हेतु मात्रभाषा का प्रयोग
4. बालक का सर्वागीण विकास करना।
5. पाठ्यक्रम में भारतीय दर्शन की प्रमुख विचारधाराओं को समुचित स्थान
6. प्राचीन संस्कृति और भौतिक युग के मध्य शिक्षा का सतु।
7. राष्ट्र स्वंय सबल हेतु राष्ट्रीय शिक्षा का सिद्धान्त।
8. लोकोपकारी एवं व्यवहत्त स्वरूप वाली शिक्षा का सिद्धान्त।

---

(1) पण्डित दीनदयाल उपाध्याय— कर्तव्य एवं विचार पृष्ठ 375—76
दर्शनिक अभिधारणये "धर्म" डा0महेश चन्द्र शर्मा

9. बालक में कर्तव्यों के प्रति जागरूकता का सिद्धान्त।

10. नैतिकता और चारित्रकता का विकास।

11. जीविकोपार्जन एवं अनुभव जन्म शिक्षा सिद्धान्त।

12. समायोजन की क्षमता के विकास का सिद्धान्त।

(2) पं0दीनदयाल उपाध्याय एवं मदन मोहन मालवीय के शैक्षिक विचारों की वर्तमान भारतीय परिवेश में संगति–

उपाध्याय जी ने माना है कि अध्यात्मिक प्रकृति के कारण ही मानव के अन्दर कला, संस्कृति, सदाचार ,दया, धर्म, नैतिकता और उदारता के गुणों का विकास होता है इसलिए शिक्षा के द्वारा मनोवैज्ञानिक ढंग से मनुष्य के इन गुणों को पुष्ट बनाने का कार्य किया जाना चाहिए। ऐसा न किये जाने पर उन्होंने मानस के विकृत होने एवं धर्म के क्षीण होने की सम्भावना व्यक्त की है।

भारतीय परिवेष में " संस्कार सिद्धान्त" शिक्षा का मूलाधार है। संस्कारों के आधार पर ही शिक्षा के द्वारा बालक का शारीरिक मनासिक बोद्धिक ,नैतिक एंव अध्यात्मिक विकास होता है अधिगम की सम्पूर्ण प्रकिया इस संस्कार सिद्धान्त पर आधारित है।

महामना जी नैतिक मूल्यों के साथ ही विकासवाद के समर्थक थे। बालक को शैने–शैने परिवार ,समाज, एवं धर्म आदि संस्थाओं के सम्पर्क में लाकर नैतिक माग्र पर लाया जा सकता है। देशभक्त के प्रबल प्रेरक को जन–जन में जागृत करना। मानव की अतिवादी इच्छाओं को शिक्षा द्वारा परिष्कृत करने मेंमहामना जी आस्था रखते थे व्यक्ति की मौलिक इच्छाओं का दमन न करके उसको एक निश्चित मार्ग पर ले जाते है।

महामना जी व्यक्ति के सांस्कृतिक स्वरूप को भौतिकता से समन्वित करने का प्रयास करते है। उन्होंने हिन्दुत्व के नाश से विकृत विनाश की सम्भावना व्यक्त की है क्योंकि हिन्दुत्व में ही आत्मा–अमरता लाभाव सन्निहित है। उन्होंने बालक की प्रारम्भिक शिक्षा पर विशेष बल दिया है इसे अनिवार्य और नि:शुल्क बनाएं जाने का पस्ताव रखा। बालक अन्तः लगन एंव रूचि के आधार पर वह मार्ग में आने वाली समस्त बाधाओं को पार कर जाता हे। वह विधार्जन के आस्वादन को नहीं जानता तो आगे उससे किसी भी प्रकार की सम्भावना कैसे की जा सकती है।

उपाध्याय जी ने व्यक्तित्व निर्माण के लिए सद कर्मो एवं संस्कारों की आवश्यकता पर बल दिया। मातृभाषा के माध्यचम से शिक्षा देने का सुझाव उनके मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का ही परिचायक है। क्योंकि अन्य भाषाओं की अपेक्षा मातृभाषा के माध्यम से बालक सहज रूप में सरलतापूर्वक ज्ञान प्राप्त कर सकता है उनके व्यष्टि और समिष्ट, सामन्जस्यपूर्ण समाज व्यवस्था तथा राष्ट्र की आत्मा 'चिति' नामक लेख कोटिशः भारतियों को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रभावित करने मे सफल सिद्ध हुए है।

महामना जी ने भी मातृभाषा शिक्षण पर बल दिया और शिक्षा का माध्यम मातृभाशा बनाने पर जोर दिया। बालक सहज ज्ञान को सरलता, सुगमता एवं शीध्रता से आत्मसात कर लेता है। किन्तु यदि ज्ञान प्राप्ति के लिए विदेशी या आरोपित भाषा के दुरूह सागर को पार करना पड़े तो बालक का सम्पूर्ण जगन एवं शक्ति प्रायः समाप्त हो जाती है इसी आधार कोल`कर महामना जी ने शिक्षा का माध्यम मातृभाषा को बनाने पर बल दिया।

(क) उपाध्याय जी का वैज्ञानिक विश्लेषण–

पं0दीनदयाल उपाध्याय महान दार्शनिक थे और दार्शनिक मूलतः वैज्ञानिक होता है। वे संस्कृति का संरक्षण मात्र करने वालों में से नहीं थे, वरन संस्कृति को गति प्रदान कर सजीव बनाने वाले युगदृष्टाथे। रूढ़ियों परम्पराओं और अन्ध विश्वासों के पूर्णतः विरोधी लेकिन पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान को ऑख बन्द करके स्वीकार करने का समर्थक भी नहीं थे। मानव द्वारा आर्जित सम्पूर्ण ज्ञान विज्ञान का संकलित विचार करके अपने ज्ञान और व्यवहार को स्वदेशानुकूल ढालकर स्वीकार करने का सुझाव उन्होंने हमें दिया है।

सम्पूर्ण सृष्टि की अनेकता में उन्होंने एकता का सूत्र निकाला तथा अनेकता में एकता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

भारतीय जीवन को भोतिक दृष्टि से सम्पन्न बनाने के लिए उन्होंने भौतिक साधनों की आवश्यकता का अनुभव किया है लेकिन मशीनों को प्रयोग के कारण मानव के बेरोजगार होने वाले खतरों से भी सावधान करने का कार्य किया है।

उपाध्याय जी ने अपने देश की प्रगति के लिए उपयुक्त यंत्रों के निर्माण का सुझाव दिया है। विज्ञान को प्रगति का लक्ष्य और विकास के लिए आवश्यक बताते हुए अपने देश में प्रौधोगिकी के विकास पर भी बल दिया है तथा जोरदार शब्दों में यह घोषणा भी की है।

"विज्ञान किसी देश की बपौती नहीं वह हमारे भी अभ्युदय का साधन बनेगा। [1]

---

(1) मालवीय जनर्संघ– सिद्धान्त एवं नीतिया पं0दीनदयाल उपाध्याय पृष्ठ–4

अतः पण्डित दीनदयाल जी एक महान चिंतक, कर्मयोगी, दार्शनिक, तत्वेवेत्ता और विज्ञान वेत्ता थे। उन्होनं संघर्ष के स्थान पर " परस्पर पूरकता" तथा परस्परावलम्बन और विवधता के मूल में निहित "एकता" का सिद्धान्त प्रस्तुत करके मानव जीवन को सुखी और समृद्धिशाली बनाने का आजीवन प्रयास किया।

(ख) महामना जी का वैज्ञानिक विश्लेषण–

महामना जी भारतीय संस्कृति के उपासक होने के साथ ही आधुनिक विज्ञान के भोथ्तक विकास से भी प्रभावित थे। उन्होंने प्राचीन भारतीय संस्कृति को आधुनिक वैज्ञानिक युग से एकीकृत करके अपनी शिक्षा द्वारा विश्वकल्याण की भावना का प्रार्दुभाव किया। महामना जी को विज्ञान से अनेक आशाये थे। महामना जी ने समय समय पर अपने दिये गये भाषणों मे देश को चतुर्मुखी उन्नति के लिए विकास हेतु विज्ञान को सहायक बताया। विज्ञान आधुनिक संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। इससे मानव कल्याण की नवीन आशाएं एवं समभावनाएं बंधी है।

महामना जी मानव को शिक्षा द्वारा वौद्विक प्रशिक्षण देने के पक्ष में थे। जिससे वह वैज्ञानिक प्रगति में अन्य देशों से पीछे न रहे साथ ही जीवन के वरदानों को अभिशाप में परिवर्तित न कर दें। वैज्ञानिक समाज विवेकहीन, निरूद्देश्य एवं दुखमय न हो जावें। अतः वैज्ञानिक अनवेषणों का सदप्रयोग करने की बात अपनी शिक्षा द्वारा स्थापित करते थे। महामना जी वैज्ञानिक दिशा में नये मूल्यों की खोज करने एवं नवीन लक्ष्यों का निर्धारित करने के पक्ष में थे। इसके लिए महामना जी अपनी शिक्षा द्वारा बालकों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति का विकास करने पर बल देते थे।

(ग) शैक्षिक उद्देश्यों की तुलना–

पंडित दीनदयाल जी उपाध्याय ने शिक्षा के द्वारा जिन उद्देश्यों को प्राप्त करने की बात कही उनमें धर्म और अधर्म का स्पष्ट मान व्यष्टि और समिष्ट के हितों की सीमाओं का ज्ञान परम्परा और परिवर्तन का सम्बन्ध लोकमत परिष्कार एवं सामाजिक सुधार प्रमुख है। इस प्रकार सामाजिक परिवर्तन के लिए उपाध्याय जी ने शिक्षा को एक मात्र माध्यम बताया। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य सभी पुरुषार्थ को प्राप्त करता है इतना ही नहीं अपने कल्याण के साथ साथ अपने स्वार्थी की पूर्ति के साथ साथ दूसरे के हितों की भी चिन्ता करता है।

सामाजिक यथास्थिति वाद के विरोधी होते हुए भी पण्डित दीनदयाल जी उग्र परिवर्तन के समर्थक नहीं थे। अतः लोगों ने उनके तथा संघ के दर्शन को यथा स्थिति वादी माना है लेकिन पंडित जी का विचार था कि "समाज सुधारक" परिवर्तन के लिए वग्र रहते है। " क्रान्तिकारी " समूल उलट देने की बात कहते है। जो दोनो ही समाज के लिए धातक है। इसका विपरीत प्रभाव हानिकारक हो सकता है। इसलिए तत्काल चमत्कार की चिन्ता छोडकर समाज को संस्कारित करने का कार्य मन्दगति एवं अथक परिश्रम से ही साध्य होता है। विकास का इस प्रकिया को सही दिशा देने का कार्य शिक्षा ही कर सकती है। सामाजिक विषयों में उन्होंने "शिक्षा" पर अपेक्षाकृत अधिक क्रमवद्ध विचार प्रस्तुत किये है।

महामना जी के शैक्षिक उद्देश्यों पर विचार करते हुए शोधकर्ता उनकी तात्कालिक परिस्थितियों से उन्हें आवृत पाकर स्वराज्य प्राप्ति और चारित्रिक विकास को शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य मानता है। उनके शैक्षिक लक्ष्य "सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" की भावना से प्रणीत है इनके शैक्षिक उद्देश्य आदर्शवाद एवं व्यवहार वाद से

प्रभावित है। आदर्श के साथ साथ उन्होनें वर्तमान भौतिक परिवेश से समन्वय करने के लिए प्रयोगवाद को भी अपने लक्ष्यों में स्थान दिया है। मुख्यरूप से इनके उद्देश्यों को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है।

1. श्रुतियों तथा स्मृतियों द्वारा प्रतिपादित वर्णश्रम धर्म के पोषक सनातन धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए शिक्षक तैयार करना।
2. संस्कृत भाषा और साहित्य के अध्ययन की अभिवृद्धि।
3. भारतीय भाषाओं तथा संस्कृति के द्वारा वैज्ञानिक तथा शिल्प कला सम्बन्धी शिक्षा के प्रचार में सहयोग देना।

महामना जी अस्पृश्यता को हिन्दू जाति का कलंक मानते थे और धर्म पर बल देते थे धर्म का ज्ञान शिक्षा द्वारा किया जा सकता है। धर्म पर मानवीय एकता आधारित है।

(घ) पाठ्यक्रम की तुलना—

वर्तमान समय में सम्पूर्ण देश में अनेकानेक शिक्षण संस्थाओं द्वारा विधार्जन के बाद छा.त्र को धनोर्जन के योग्य बनाना मुख्य उद्देश्य है। जिससे मानवीय गुणों का निरन्तर ह्रास हो रहा है।

पण्डित दीनदयाल के अनुसार पाठ्यक्रम ऐसा हो जो छात्रों के लिए अर्थोपार्जन में सहायक सिद्ध हो सके। लेकिन जीवन के प्रति अतिसय अर्थवादी दृष्टिकोण के लिए वह सर्वथा विपरीत थे। पाठयक्रम ऐसा होना चाहिए जिसके द्वारा शारीरिक, व्यवसायिक ,मानसिक ,नैतिक एवं अध्यात्मिक उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके।

उपाध्याय जी ने बालक के सर्वांगीण विकास के लिए पाठ्येत्तर क्रियाओं के आयोजन का सुझाव विद्यालय स्तर पर करने को दिया। व्यक्ति को शारीरिक रूप से स्वस्थ्य एवं बलिष्ठ होना चाहिए। इस हेतु उन्होने व्यायाम की शिक्षा पर विशेष बल दिया। वर्तमान समाज में प्रचलित अस्पृश्थता ,ऊँच–नीच, भेद–भाव ,गरीब, बेरोजगारी मंहगाई, दहेज आदि बुराईयों से छात्रों को प्रत्यक्ष परिचित कराने के लिए उन्होनें पाठ्येत्तर क्रियाओं पर बल दिया।

महामना जी द्वारा प्रतिपादित पाठ्यक्रम में आदर्शवादी शिक्षा दर्शन एवं प्रयोगवादी शिक्षा दर्शन का संयुक्त प्रभाव परिलक्षित होता है, वे नयन मूंद कर किसी सत्य को स्वीकार नहीं करते थे वरन् उसकी सात्विकता को परखकर उस पर विश्वास करते थे। उन्होंने न केवल अध्यात्मवाद और प्राचीन संस्कृति पर उन्होंने बल दिया वरन् तत्कालिक परिस्थितियों के अनुरूप वास्तविकता के कठोर धरातल पर दृढ़ता से टिकने के लिए भौतिक विकास को भी शिखण का महत्वपूर्ण लक्ष्य माना।

महामना जी ने बेकारी की समस्या को देखते हुए औधोगिक शिक्षा के पाठ्यक्रम पर बल दिया। जिसमें हस्तशिल्प के साथ ही तकनकी शिक्षा के पाठ्यक्रम पर भी जोर दिया। इस प्रकार पाठ्यक्रम में आदर्शवाद तथा प्रयोगवाद का बहुत रूप में स्वीकार किया। और उन्होंने न केवल व्यक्ति विशेष या देश विशेष का उत्थान करना चाहा वरन् वसुधै कुटुम्बकम् के लक्ष्य की प्राप्ति का साधन शिक्षा को माना। अतः महामना जी द्वारा प्रतिपादित पाठ्यक्रम आदर्शवादी, प्रयोगवादी तथा मानवतावादी दर्शनों से प्रभावित था।

(ङ.) शिक्षण पद्धतियों की तुलना–

उपाध्याय जी ने अपनी शिक्षण पद्धति में प्राचीन एंव अर्वाचीन दोनो ही शिक्षण विधियों का समन्वय स्थापित किया है एक और जहां उन्होंने आगमन निगमन ,स्वाध्याय और व्याख्यान जैसी प्राचीन शिक्षण विधियों को अपनी शिक्षण पद्धति में स्थान दिया है वही दूसरी ओर वैज्ञानिक ,मनोवैज्ञानिक रचनात्मक ,क्रियात्मक एवं दृश्य–श्रृव्य जैसी आधुनिकतम शिक्षण विधियों का प्रयोग करने में किसी भी प्रकार का संकोच नहीं किया। उपाध्याय जी किसी एक शिक्षण विधि के अनुयायी या पिछलागू नहीं थे वरन् अपनी शिक्षा प्रणाली के अनुरूप अपनी सूझबूझ के अनुसार उपयुक्त शिक्षण विधियों को गृहण किया।

महामना जी की शिक्षण विधियों का सांगोपांग अध्ययन कर निष्कर्ष निकाला कि उनकी शिक्षण विधि राष्ट्रीय चेतना का जागरण करने वाली, जीवकोपार्जन में सक्षम बनाने वापली आधुनिक प्रविधि पर अवलम्बित तकनीकी, अध्यात्मिक, राजैनेथ्तक एवं औधोगिक शिक्षा का ज्ञान कराने वाली और आत्मबल का विकास करने वाली है महामना जी की शिक्षण पद्धति उनके युग की आकांक्षा के अनुरूप प्रगतिशील एवं आधुनिक है।

(च) अनुशासन सम्बन्धी तुलना–

पंडित दीन दयाल जी ने शिक्षा को त्रिमुखी प्रकिया के रूप में स्वीकार किया है और कहा हे कि शिक्षा केवल शालेय उपक्रम मात्र नहीं वरनृ एक सम्पूर्ण सामाजिक प्रक्रिया है शालीय शिक्षा उसका महत्वपूर्ण हेतु हुए भी केवल शालंय शिक्षा से समाज सर्वागीण रूप से सुशिक्षित नहीं हो सकता है।

पं0 दीनदयाल उपाध्याय शिक्षण संस्थाओं में स्वतंत्रत अनुशासन के पक्षधर दिखाई देते है जैसा कि उनका कहना है कि " इस ज्ञान की छाप जितनी गहरी सुस्पष्ट और व्यवस्थित रहेगी उतना ही मानव जीवन यात्रा में सरलता और शान्ति से पग बढ़ा सकेगा। [1]

महामना जी शिक्षा जगत में छात्र को निरंकुश नहीं बनाना चाहते थे साथ ही वे यह भी नहीं चाहते थे कि छात्र बाह्य दवाव में रहते हुए अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व को ही कुण्ठित कर लें। वे चाहते थे कि उनकी शिक्षा के माध्यम से आत्मविश्वासी तथा स्वालम्बी छात्रों का विकास हो। वे छात्रों का आत्मिक एवं अध्यात्मिक विकास भी विद्यालय के स्वतंत्र वातावरण में ही करना चाहते थे। उनकी धारणा थी कि बिना आत्मानुशासन के कोई छात्र अच्छा ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। अतः छात्र के लिए अनुशासित रहना , परमावश्यक है। महामना जी छात्र को स्वतंत्रता प्रदान करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहते थे कि कही इससे छात्र में उच्छरवलता विकसित न हो जावे। अतः महामना जी सदैव छात्र को निर्देशित एवं नियंत्रित स्वतंत्रता ही देने के पक्ष में थे।

(छ) छात्र अध्यापक सम्बन्धी तुलना–

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने कहा कि वर्तमान में पिता पुत्र के सम्बन्ध तो दूर वैरभाव निर्मित हो गया है आये दिन छात्र और अध्यापक में झगड़े होते रहते है आपसी वैमनस्य आम बात हो गयी है मात्र धनोपर्जन के उद्देश्य से शिक्षक बनने वाले व्यक्ति सदैव अधिकाधिक धनार्जन की उधेड़बुन में लगे रहते है, मौका लगने

---

(1) राष्ट्र चिन्तन "शिक्षा" पं0दीनदयाल उपाध्याय– राष्ट्र धर्म पुस्तक प्रकाशन लखनऊ अध्याय–14 पृष्ठ–99

पर अपने छात्र से भी धन ऐठने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करते है। छात्र भी शिक्षकों का अपमान करने में गर्व का अनुभव करते है।

महामना जी की द्वारा प्रगति शिक्षण प्रणीत शिक्षा प्रणाली में छात्र–अध्यापक सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हुए शोधकर्ता को उनकी यह पंक्ति श्यहां उद्धत करनी पड़ती है– " काशी हिन्दू विश्वविद्यालय आधुनिक युग का गुरूकुल है" इस पंक्ति के आधार पर गुरू शिष्य सम्बन्धों की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है।

" आधुनिकता " से तात्पर्य यहां वैज्ञानिक एवं भौतिक विकास से है, जबकि हम किसी अन्य देवा या राष्ट्र से पिछड़े हुए न हो दूसरा शब्द "गुरूकुल" है गुरुकुल प्रणाली हमारी प्राचीन शिक्षा का धोतक है। जब बालक गुरू आश्रम में जाकर अपने जीवन के प्रारम्भिक पच्चीस वर्षो तक ब्रह्मचर्य नियमों का पालन करते हुए अपनी भक्ति एवं र्म के द्वारा गुरू की दक्षिण देकर ज्ञानार्जन करता हे। यहां गुरू–शिष्य सम्बन्धों की बिना अनुभूति क आधार पर ही सुखद कल्पना की जा सकती है शिक्षक बालक का सबसे बड़ा हितैषी होता है और बालक के लिए अध्यापक(गुरू) की आज्ञा ही ब्रह्मआज्ञा है वह अध्यापक (गुरू) के एक संकेत पर अपने प्राणों तक का उत्सर्ग करने को तैयार रहता है। शिष्य की विधार्जन में प्रगीणता ,शास्त्रों में परक्रम और व्यवहारिक विनम्रता मानों दर्पण में गुरू के पड़े हुए प्रतिविम्ब के समान है। इस प्रकार स्पष्ट है कि महामना जी की शिक्षाम` निहित छात्र–अध्यापक सम्बन्ध आदर्श परक एवं सौहार्द्रपूर्ण है। पारस्परिक संघर्षशीलता और कटुता का भाव यहां नहीं है। इस प्रकार महामना जी द्वारा प्रणीत गुरू–शिष्य सम्बन्धों की सुन्दर झलक उनके द्वारा कथित पंक्ति– " काशी हिन्दू विश्वविद्यालय आधुनिक युग का गुरूकुल है" में स्वंय ही स्पष्ट हो जाता है।

अध्याय सप्तम

निष्कर्ष एवं सुझाव

प्रस्तुत शोध कार्य भारतीय शिक्षा जगत से सम्बन्धित है जिसमें महामना एवं उपाध्याय जी एक—एक इकाई के रूप में प्रतीत होते है। इस शोध कार्य में महामना जी एवं उपाध्याय जी के शैक्षिक चिन्तन, विचार एवं कृतित्व का दार्शनिक सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। शोधकर्ता ने पाश्चात्य शिक्षा विदों की श्रेणी में भारतीय शिक्षा विदों एवं विचारको को रखना उचित नहीं समझा , क्योंकि भारतीय परिवेष एवं परिस्थितियां देशों से सर्वथा भिन्न हे। साथ ही औधोगिक दृष्टि से विकसित परिश्चमी समाज की तुलना में भारतीय समाज अभी पर्याप्त रूप से पिछड़ा है। भारत को अपनी औधोगिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पाश्चात्य देशों पर निर्भर करना पड़ता है। सदियों से पराधीनता के कारण अपनी प्राचीन गरिमामयी संस्कृति से अनभिज्ञ भारतीय जनता को पुनः चेतन तथा सचेष्ट करने के लिए भारतीय विचारकों को अपनी परिस्थितियों के अनुसार कार्य करना पड़ा, न कि वसे इसके स्थान पर पश्चिमी विचारकों के विचारों से सहमति या असहमति प्रकट करने का कार्य करते। अतः इतना कहना ही पर्याप्त है कि अपने क्षेत्र और अपने कार्य के अनुरुप उन्होंने शिक्षा का स्वरूप निर्धारित किया। भारतीय विचारकों में प्रतियोगिता की भावना नहीं थी, वरन् जीवन के सच्चे मूल्यों की खोज करना जोकि काल के गर्त में समाधिस्त कर दिये गये है उनको पुनः जागृत कर स्मरण करना ही उनकी शिक्षा का लक्ष्य था। इसी आधार पर शोधकर्ता ने भारतीय विचारक पं0दीनदयाल उपाध्याय एवं पं0महामना मदन मोहन मालवीय जी को अपने

शोध कार्य के लिए अध्ययन का विषय बनाकर भारतीय परिवेश में उसकी उपयोगिता एवं वर्तमान परिस्थितियों में उसकी समन्वयात्मकता एवं क्रियाशीलता का सम्मिलित अध्ययन कर अपना निष्कर्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

आधुनिक भारत के स्वीधीनता संग्राम कालीन विचारक, उपनिवेश वादी, शासनाधीन समाज की गतिविधियों से उत्पन्न समस्याओं के विचारक है। तत्कालीन परिस्थितियों में भारतीय समाज के सम्मुख अशिक्षा स्वाधीनता प्राप्ति के मार्ग में एक राष्ट्रीय स्तर की समस्या थी। उस समय भारतीय समाज की प्रमुख समस्या औधोगिकीकरण , नगरीकरण आदि के परिणाम स्वरूप अस्त व्यस्त समाज को पुर्नगठित करना था। जबकि भारत की तत्कालीन प्रमुख समस्या अपनी संस्कृति की रक्षा एवं स्वाधीनता प्राप्त करने के साथ ही भौतिक विकास को प्राप्त करने की थी। जो शिक्षा के समुचित प्रचार एवं प्रसार द्वारा ही सम्भव था। अतः भारतीय मनीषियों एवं विचारकों ने भारतीय समस्याओं के निराकरण हेतु भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किये। उन्हीं विचारकों में से महामना मदन मोहन मालवीय एवं पं0दीनदयाल उपाध्याय जी है। महामना जी एवं उपाध्याय जी के शैक्षिक विचार धारा को जानने के लिए पिछले अध्यायों में उनके द्वारा निर्धारित शैक्षिक स्वरूप, शैक्षिक उद्देश्य एंव पाठ्यक्रम ,शिक्षण पद्धति एवं अनुशासन, प्रशासन एवं संगठन के साथ ही साथ शिक्षण प्रक्रिया में आवश्यक अंगों पर शोधकर्ता ने प्रकाश डाला हे। जिसके परिणाम स्वरूप महामना जी एवं उपाध्याय जी की शैक्षिक अवधाराओं को उनके जीवन वृत्ति, आचार व्यवहार आदि के साथ ही उनकी महान उपलब्धियों को अपना आधार बनाकर शोधकर्ता इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि अनेक भारतीयों मनीषियों एवं विचारकों ने राष्ट्र की भावी दिशा सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण चिन्तन प्रस्तुत करने का पुण्य कार्य किया है। पं0दीनदयाल जी एवं महामना जी भी उन्हीं महापुरूषों

में एक आधुनिक राष्ट्रीय चिन्तक तथा अग्रगण्य महामानव हे जिनके मार्ग दर्शन में चलकर निश्चित ही यह राष्ट्र परम वैभव को प्राप्त करने में समर्थ सिद्ध हो सकेगा। अतः शोधकर्ता ने 19वीं शताब्दी के महान क्रान्तिकारी शिक्षाविद महामना एवं उपाध्याय जी के शिक्षा विचारों की शैक्षिक अवधारणा का तुलनात्मक अध्ययन भारतीय लोकतंत्रात्मक परिवेश के सन्दर्भ में निम्नलिखित सोपानों में प्रस्तुत किया गया है।

1. महामना जी के शिक्षा दर्शन में मानव का जगत एवं पदार्थ के प्रति जो दृष्टिकोण होता है वह उस व्यक्ति के सामाजिक राजनैतिक एवं शैक्षिक दृष्टिकोण को प्रभावित करता हे उपाध्याय जी ने इस जगत में प्रत्येक मनुष्य के हाथो को काम और पेट के लिए मानवीय दृष्टिकोण को प्रमुखतः दी हे। अर्थात उपाध्याय जी सच्चे अर्थो में मानवता के पुजारी थे उनकी भावना, उनकी कामना उकने उत्कृष्ट मानवीय दृष्टि का ही रूपान्तरण है।

2. तत्वमीमांसीय दृष्टिकोण के अन्तर्गत– पण्डित दीनदयाल जी ने "चिन्तन'8 को वर्गीकृत किया है और व्यक्ति को शरीर, मन बृद्धि और आत्मा इन चारो तत्वों का समुच्यय बताया है उन्होंने कहा है कि आत्मा का विच्रार आवश्यकता से अधिक करते है। किन्तु यह सत्य नहीं है कि शरीर मन और बुद्धि का विचयार न किया जाये अन्य लोगों ने तो केवल शरीर का विचार किया इसीलिए आत्मा का विचार हमारी विशेषता हो गयी। जबकि महामना जी ने प्रमुखतः आतमा की सत्ता को स्वीकार करते है। वे शिक्षा का लक्ष्य आत्मोन्नति विशेष रूप से महत्वपूर्ण मानते है।

3. ज्ञानमीमांसा दृष्टिकोण के अन्तर्गत– उपाध्याय जी के अनुसार– ज्ञान की विवेचना या पुर्नानुभव ही ज्ञान की मीमांसा हे। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष तुझ पुरूषार्थी में धर्म पुरूषार्थ का विश्लेषण कि बुद्धि राष्ट्र की परम्पराये ,यज्ञभाव और ज्ञान या शिक्षा इन चार का समुच्चय धर्म पुरूषार्थ है उपाध्याय जी के एक कथन द्वारा ही शोधकर्ता ने ज्ञानमीमांशीय दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। '' कुछ लोगों का कहना है कि राष्ट् मानवता का विरोधी है इसका कारण बताया जाता है कि विश्व में इतने कितने ही राष्ट्र है जिन्होंने मानव का अहित किया किन्तु क्या किसी वस्तु के दुरूपयोग से ही वस्तु खराब हो जाती है? आग से मकान जल गये तो क्या यह बुद्धिमानी होगी कि आग का उपयोग करना छोड़ दिया जाये वह दृष्टिकोण ठीक नहीं कहा जा सकता। हमें विवेक से काम लेना होगा। यही सही है कि कुछ राष्ट्र ऐसे है जिन्होनें मानवता के लिए संकट पैदा किया है वैसा ही परिणामह मारी राष्ट्रीता से भी, यह निष्कर्ष ही गलत है। महामना जी के अनुसार शिक्षा पर ज्ञानमीमांसा का दृष्टिकोण होता है वे प्रत्येक कार्य को ज्ञान पूर्ण तर्क वितर्क के पश्चात ज्ञान रूप में परिर्णित करने की संज्ञा देते थे वे बिना विचारित किसी कार्य को करने के पक्ष में नहीं थे वे तार्किक परसाणुवादी होने का पूर्ण परिचय प्रस्तुत करते थे और भौतिक विकास के प्रति पूर्ण रूप से जागरूक थे। इनकी शिक्षा में भौतिक समाद्धि एवं विकास के साथ ही स्वय नैतिक आदर्शो का भी प्रमुख था।

4. आदर्शवादी दृष्टिकोण के सम्बन्ध में उपाध्याय जी आदर्शवाद मनुष्य के अध्यात्मिक पक्ष पर अधिक महत्व देते थे अपनी शैक्षिक विचारधारा में उन्होंने

भौतिकता की अपेक्षा अध्यात्मिकता को अधिक महत्व प्रदान किया है। मानव के अन्दर दया, ममता, बन्धुता, परोपकार और उदारता जैसे सर्वश्रेष्ठ गुण आध्यात्मिकता के द्वारा ही उत्पन्न होते है। मानव के लिए प्राप्त मूल्य उन्होंने सत्यम् शिवम् सुन्दरम् बताया है। विविधता में देवी एकता के सिद्धान्त का अपने ढंग से प्रतिपादन किया है। अतः उनकी शैक्षिक विचार धारायें आदर्शवाद पूर्णतः परिलक्षित होता है। महामना जी कहते है कि आदर्शवाद मानव के अध्यात्मिक पक्ष पर बल देता है आदर्शो की प्राप्ति को अपना परम लक्ष्य मानता हे। इनकी शिक्षा का लक्ष्य भी आदर्श समाज तथा आदर्श राष्ट्र की स्थापना करना था। वे व्यक्ति के आचरण एवं व्यवहार में सात्विकता को महत्व देते थे। उन्होंने भारतीय अध्यात्मिक संस्कृति को विश्व की संस्कृति में सर्वोपरि स्थान दिया। महामना जी भारतीय संस्कृति को अखण्ड एवं सुरक्षित बनाएं रखना चाहते थे और इस भावना के बल पर विश्व कल्याण के इच्छुक थे और मानव कल्याण क आर्दशों के सम्पादक थे। महामना जी के शैक्षिक सिद्धान्त वसुधैय कुटुम्बतम् की पवित्र भावना से प्लावित एवं परिवर्तनकारी भावना से ओत–प्रोत थे इसी कारण वे कभी भी जीर्ण, शिथिल एवं निष्प्रभावी नहीं हो सकेंगें।

5. प्रयोजनवादी दृष्टिकोण के अन्तर्गत– राष्ट्र का कल्याण एवं राष्ट्र की स्वतंत्रता उपाध्याय जी का मुख्य प्रयोजन है अतः इस प्रयोजन को पूरा करने वाले असत्य को भी वह सत्य से बड़ा मानते है। राष्ट्र के कल्याण और राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए कुछ भी करने के लिए उधत रहना उनके प्रयोजनवादी होने के लक्षण है। महामना जी प्रयोजनवादी नित्य बदलते युग के मानव जीवन के

मूल्यों में परिवर्तन के साथ ही साथ मान्यताओं के परिवर्तन पर बल देते है। महामना जी की शिक्षा प्रयोगवाद के आधार पर पूर्णतया प्रयोजनवादी दिखाई पड़ती है। वह अपने लक्ष्य प्राप्ति हेतु अपने सिद्धान्तों को शीघ्र ही परिवर्तित कर लेते है। यह सत्य का मापदण्ड है। वह प्रत्येक बात जो न केवल सैद्धान्तिक एंव भौतिक रूप से बल्कि व्यवृद्वत रूप से भी सत्य एवं उपयोगी सिद्ध होती है उसे स्वीकार करते है। यह प्रयोजनवाद दर्शन की मूल धारणा है।

6. भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार उपाध्याय जी ने संस्कार सिद्धान्त शिक्षा का मूलाधार माना है संस्कारों के आधार पर ही शिक्षा के द्वारा बालक का शारीरिक मानसिक, बौद्धिक नेतिक एवं अध्यात्मिक विकास होता है। अधिगम की सम्पूर्ण किया इस सिद्धान्त पर आधारित है जबकि महामना जी ने बालक की प्रारम्भिक शिक्षा पर विशेष बल दिया है और शिक्षा को निःशुल्क एवं अनिवार्य बनाएं जाने पर बल दिया है। अध्यात्मिक विकास के साथ ही साथ भौतिक विकास पर बल दिया है। महामना जी बल पूर्वक बालक पर शिक्षा आरोपित करने के पक्ष में नहीं है।

7. उपाध्याय जी ने इस वैज्ञानिक युग में अपने देश की प्रगति के लिए उपयुक्त यंत्रों के निर्माण एवं उपयोग का सुझाव दिया है उन्होंने कहा है कि विज्ञान किसी देश की बपौती नहीं वह हमारे भी अभ्युदय का साधन बनेगा। महामना जी ने प्राचीन भारतीय संस्कृति को आधुनिक वैज्ञानिक युग एकीकृत करके अपनी शिक्षा द्वारा विश्व कल्याण की भावना का प्रादुर्भाव किया। ये दोनो यह पुरुष दार्शनिक होने के साथ साथ वैज्ञानिक प्रतिमा के भी धनी थे।

(2) उपाध्याय जी एवं महामना जी के शिक्षा दर्शन के सबल पक्ष–

श्री उपाध्याय जी की शिक्षा एकात्मक मानव दर्शन पर आधारित भारतीय संस्कृति का संरक्षण और संवर्द्धन करते हुए राष्ट्र की भौतिक एवं अध्यात्मिक समद्धि का मार्ग प्रशस्त करने वाली शिक्षा के रूप में हमारे उपस्थित होती है। महामना जी विश्व के वैज्ञानिक एवं भौतिक विकास पर ध्यान केन्द्रित करते है तत्व और ज्ञान के साथ ही महामना जी की शिक्षा सामाजिक प्रक्रम पर आधारित है। उसमें आदर्शवाद और प्रयोजनवाद का पूरा प्रभाव परिलक्षित होता है। शोधकर्ता ने सबल पक्ष के रूप में इन महापुरूषों ,शिक्षाशास्त्री की शैक्षिक अवधारण की कुछ मुख्य विशेषताएं निम्न प्रकार दी है–

(क) भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का महत्व– महापुरूषों के जीवन और यश की स्मृतियां उनके आदर्श उनका चिन्तन आज भी राष्ट्र के लिए अमूल्य सम्पत्ति और शक्ति का श्रोत है उपाध्याय जी ने भारतीय संस्कृति को एकात्मवादी कहा " आत्माह" सर्वभूतेष" को स्वीकारने वाली तथा मानव मात्र के कल्याण का ही नहीं वरनृ मानवेत्तर प्राणियों और वनस्थितियों तक के कल्याण का मार्ग दर्शन करने वाली है उन्होंने कहा है कि अन्य संस्कृतियों में मानव के एक–एक पक्ष का ही विचार किया है। इन्होनें संस्कृति के संरक्षण, संवर्धन एवं हस्तान्तरण को ही "शिक्षा" की संज्ञा दी है। महामना जी की शिक्षा आधुनिक परिवेश में आधुनिक उपकरणों द्वारा विशाल भवनों मे प्रदान की जाती थी किन्तु फिर भी उनकी शिक्षा प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति स्पष्टतः प्रतिविम्बित होती है। व भारतीय संस्कृति के सम्पोषक एवं उपासक थे।

उन्होंने अपनी शिक्षा में प्रत्येक भारतीय को अपनी धर्म एवं मजहब पर दृढ रहने का उपदेश दिया। प्राचीन भारतीय संस्कृति के गौरव को इन महापुरूषों के चिन्तन धारा के द्वारा जो कि वर्षो की पराधीनता के कारण प्रायः विस्तृत थी अपनी शिक्षा द्वारा नवचेतना प्रदान करना आवश्यक समझा।

(ख) एकीकरण की भावना का विकास– सामाजिक एकता एवं राष्ट्रीय एकता उपाध्याय जी एवं महामना जी के प्रिय विषय रहे है।

उपाध्याय जी सदैव हिन्दुओं के अन्दर एकता का भाव जागृत करने का आग्रह करते दिखाई पड़ते है। क्योंकि व्यक्ति को अलग–'अलग रहना असंघटित रहना उसके विनाश का कारण बनता है। तथा संघ जीवन या सामुदायिक जीवन जीना अमरत्व प्राप्त करने के समान होता है।" एकता का भाव लेकर जग उठे राष्ट्र सारा" उनकी कामना थी और आजीवन इसी मंत्र का जाप करते रहे। महामना जी ने भी कहा कि हम सभी हिन्दु–मुस्लमान, सिख–ईसाई होने से पूर्व भारतीय है। राष्ट् भक्ति हमारा परम कर्तव्य है उन्होंने कहा कि प्रत्येक छोटे समूह के समक्ष बड़े समूह के हितों को ध्यान में रखते हुए छोटे समूह के प्रति मोह को त्याग देना चाहिए। महामना जी साम्प्रदायिकता के कट्टर विरोधी थे। महामना जी ने अस्पृश्य जाति के व्यक्ति के हाथो से जल ग्रहण कर एकता का आदर्श प्रस्तुत किया। एकता के उदारणार्थ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की जो हिन्दू तथा मुसलमान सभी के सक्रिय सहयोग एवं चन्दे से परपुष्ट किया गया।

(ग) <u>मातृभाषा की उपयोगिता–</u>

यह अपनी माँ की भाषा है मातृभूमि की भाषा है स्वतंत्रता के पश्चात सम्पूर्ण शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा को स्वीकार करना उपाध्याय जी ने कहा और बताया कि मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से मातृभाषा ही शिक्षा का माध्यम है जिससे सभी लोग सरलता से शिक्षा प्राप्त कर सके। विशेष रूप से प्राथमिक शिक्षा तो मातृभाषा में ही होनी चाहिए यह उनकी उत्कट इच्छा थी और उनका प्रयास था महामना जी ने कहा कि बालक जितना मातृभाषा से सीख सकता है उतना विदेशी भाषा से नहीं एवं मातृभाषा के अभाव में भारतीय संस्कृति का ज्ञान असम्भव है। लेकिन आप का विद्यार्थी मातृभाषा का माध्यम सुलभ न होने पर विदेशी भाषा की सूली पर अभी भी झूल रहा है इस निकट समस्या का निवारणार्थ प्रयत्न करना हमारे विचारकों का परम कर्तव्य है ताकि जिस दिशा में महामना जी द्वारा सशक्त कार्य किया गया है उसे अनवरत आगे को बढ़ाया जा सके।

(घ) <u>राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण–</u>

उपाध्याय जी ने कहा कि राष्ट्रीय संस्कृति के अनकूल आचार व्यवहार ही राष्ट्रीय चरित्र है भारतीय संस्कृति में भोग के स्थान पर त्याग भौतिक समृद्धता की अपेक्षा आध्यात्मिक समृद्धता एवं सम्राटों की ओर लक्ष्मी पुत्र की अपेक्षा निस्पृट कर्मयोगियों और सन्यासियों को अधिक सम्मान प्राप्त है। हमारे साधु सन्यासी समस्त मोहो को छोड़कर देश और समाज के लिए अपना जीवन व्यतीत करते थे। देश को राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाते थे उनके त्याग और परिश्रम क्रे परणाम स्वरूप सम्पूर्ण भारत में उज्जवल राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण हुआ। महामना जी स्वराज्य प्राप्ति हेतु जन जन को शिक्षित बनाकर जन मानस में राष्ट्रीयता की भावना का प्रत्यारोपण

किया। वे सम्पूर्ण देशवासियों का चरित्र राष्ट्र पर बलिदार करने को उत्सुक हो। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय एक राष्ट्ीय संस्था है यह धर्म, नैतिकता द्वारा युवकों का चरित्रनिर्माण करना एवं राष्ट्ीय चरित्र का विकास करने के लिए महामना जी ने अपने विश्वविद्यालय में धर्म, दर्शन, कला साहित्य आदि के माध्यम से राष्ट्रीय शिक्षा की व्यवस्था की थी।

(ड.) अर्थकारी शिक्षण की अवधारण–

उपाध्याय जी ने अपनी शैक्षिक विचारधारा में अर्थकारी शिक्षा या व्यवसायिक शिक्षा की व्यवस्था प्रस्तुत की है उन्होंने कहा कि मनुष्य को पेट के साथ–साथ हाथ भी मिले है इसलिए पेट को भरने के लिए हाथो को काम चाहिए जिससे रोटी–रोजी कमाई जा कसे और अपने पेट के साथ परिवार का भी भरण पोषण किया जा सके। अर्थात मनुष्य को अपने कर्तव्य का निर्वाह करने में सक्षम बनाना है शिक्षा का उद्‌देश्य होना चाहिए।

शिक्षा इस प्रकार की जानी चाहिए कि अपनी न्यूनतम भौतिक आवश्यकाताओं की पूर्ति कर सके। रोटी कपड़ा और मकान कीउचित व्यवस्था कर सके। अर्थात इंजीनियरिंग , औधोगिक प्रोधौगिकी तथा तकनीकी शिक्षा व्यवस्था की जानी चाहिए। महामना जी केवल पुस्तकीय एवं सैद्धान्तिक शिक्षा प्रदान करने के पक्ष में नहीं थे वे छात्रो में स्वालम्बन का विकास करना चाहते थे। एक युवक से उसका परिवार पालन–पोषण की कामना करता है। यदि वह विद्यार्जन के पश्चात भी इधर उधर भटकता है तो इसे महामना जी प्राप्त शिक्षा का दोष मानते है। शिक्षा के अन्य उद्‌देश्यों जीवकोपार्जन की शिक्षा के पश्चात ही आते है। महामनाज ी इसे महत्वपूर्ण अंक मानते हुए अर्थकारी शिक्षा की अवधारणा करते है।

(च) <u>मानवीयता के प्रेरक–</u>

उपाध्याय जी की सम्पूर्ण चिन्तन धारा मानवता की प्रेरणा पुंज है। उन्होंने कहा कि आहार निद्रा, भय और मैथुन की कियाएं मनुष्य और पशु दोनो में एक समान होती है लेकिन शिक्षा और संस्कारों द्वारा मुनष्य के अन्दर श्रेष्ठ मानवीय गुणों का विकास किया जाता है। " मानव" ही उपाध्याय जी के एकात्मक मानव दर्शन का केन्द्र ब्रिन्दु है। उपाध्याय जी ने भविष्यवाणी करते हुए कहा है कि एकात्मक मानव दर्शन पर आधारित शिक्षा के द्वारा हम ऐसे मानव का निर्माण करेगें जो अपने व्यक्तिव का विकास करता हुआ सम्पूर्ण मानवता ही नहीं अपितु सृष्टि के साथ एकात्मकता का साक्षात्मकार कर नर से "नर से नारायण" बनने में समर्थ हो सकेगा। महामना जी ने विश्वमानवता से प्रेरित होकर सभी धर्मो के व्यक्तियों को संकुचित भावनाओं से बाहर निकलकर व्यापक रूप से मिलकर कार्य करने की प्रेरणा दी। उनके समय में व्रिदेशी सरकारों का देश, धर्म और जाति पर बहुत बड़ा संकट पड़ा था ऐसे समय में महामना जी शिक्षा के माध्यम से विश्वबन्धुत्व की भावना को जागृत करना एक तत्कालीन लक्ष्य था इन्होनं लोक कल्याण हेतु मानवता का आवाहन किया। यह आवाहन देश तथा काल के अनुसार सभी धर्मो के समन्वय का पोषक था एवं मानवता के आभाव में सुशिक्षा की कल्पना नहीं की जा सकती है और न ही राष्ट् प्रगति कर सकता है।

(छ) <u>सहशिक्षा–</u>

महामना एवं उपाध्याय जी दोनो ही महापुरूषों ने सामजस्यपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के लिए बालक और बालिकाओं दोनो को समान रूप से संस्कारित किये जाने का सुझाव दिया है लेकिन रूढ़िवादी तथा परम्परावादी लोग बालक–बालिकाओं

की शिक्षा पृथक–पृथक देने के पक्ष में थे किन्तु यह महापुरूष सहशिक्षा के समर्थक थे उन्होंनें सहशिक्षा द्वारा स्त्रियों में पुरूषोचित तथा पुरूषों में स्त्रियोचित गुणों को सन्निहित करने पर बल दिया। इस शिक्षा में बालक–बालिकाओं को एक दूसरे की परस्पर भावनाओं को समझने का अवर मिलता है। जीवन के समग्र, सवंगि तथा सामजंस्यपूर्ण विकास में सहशिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है।

(ज) <u>हिन्दूराष्ट्र की अवधारण–</u>

पं0दीनदयाल उपाध्याय ने भारत को हिन्दू राष्ट्र के रूप में परिभाषित किया है। उन्होंने कहा है कि भारत प्राचीन राष्ट्र है। भारतीय संस्कृति हिन्दू संस्कृति है संस्कृति ही राष्ट्र की नियामक शक्ति होती है इस प्रकार भारत " हिन्दू राष्ट्र" की प्राथमिकता महामना जी ने भी दी। उपाध्याय जी ने कहा भारत तभी तक भारत है जब तक यहां हिन्दू है । महामना ने कहा हिन्दू कोई मजहब नहीं वरन् हिन्दू तो राष्ट्रीयता है। हिन्दू और हिन्दुस्तान एक दूसरे से जुड़े है।

उपाध्याय जी के शैक्षिक लक्ष्य धर्म और अधर्म का स्पष्ट मान, व्यष्टि और समिष्ट के हितों की सीमाओं का ज्ञान परम्परा और परिवर्तन का सम्बन्ध , लोकमत परिष्कार एवं सामाजिक सुधार प्रमुख है। जबकि महामना के शैक्षिक लक्ष्य 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' की भावना से प्रणीत है। इनके शैक्षिक उद्देश्य आदर्शवाद और व्यवहारवाद से प्रभावित है। महामना जी अस्प्रश्यता को कलंक मानते थे।

(झ) <u>पाठ्यक्रम–</u>

पंडित दीनदयाल के अनुसार पाठ्यक्रम ऐसा हो जो छात्रों के लिए आर्शोपार्जन में सहायक सिद्ध हो सके और विद्यालय स्तर पर पाठ्येत्तर कियाओं के आयोजन का सुझाव दिया। जिससे समाज में प्रचलित अस्पृश्चता, ऊँच–नीच,

भेदभाव, आदि बुराईयां दूर हो सके। महामना जी द्वारा प्रतिपारित पाठ्यक्रम में आदर्शवादी एवं प्रयोगवादी शिक्षा दर्शन का संयुक्त प्रभाव परिलक्षित होता है महामना जी ने बेकारी की समस्या को देखते हुए औधोगिक शिक्षा के पाठ्यक्रम पर बल दिया। जिसमें हस्तशिल्प के साथ ही तकनीकी शिक्षा के पाइ्यक्रम पर भी जोर दिया।

(ण) शिक्षण पद्धति–

उपाध्याय जी ने एक ओर जहां उन्होंने आगमन–निगमन, स्वाध्याय और व्याख्यान जैसी प्राचीन शिक्षण विधियों को अपनी शिक्षण पद्धति में स्थान दिया है वही दूसरी और वैज्ञानिक , मनोवैज्ञानिक, रचनात्मक, कियात्मक एवं श्रृव्य–दृश्य जैसी आधुनिकतम शिक्षण विधियों का प्रयोग किया। महामना जी की शिक्षण विधियां राष्ट्रीय चेतना का जागरण करने वाली, जीवकोपार्जन में सक्षम बनाने वाली आधुनिक प्रविधि पर अवलंम्बित तकनीकी, अध्यात्मिक, राजनैतिक और औधोगिक शिखा का ज्ञान कराने वाली और आत्मबल का विकास करने वाली है।

(ट) अनुशासन–

पंडित जी शिक्षा संस्थाओं में स्वतंत्र अनुशासन के पक्षधर दिखाई देते है जबकि महामना जी शिक्षा जगत में छात्र को निरंकुश नहीं बनाना चाहते थे साथ ही वे यह भी नहीं चाहते थे कि छात्र बाह्य दबाव में रहते हुए अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व को ही कुष्ठित कर लें। महामना जी छात्र को स्वतंत्रता प्रदान करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहते थे कि कहीं इससे छात्र में उन्छंखलता विकसित न हो जाये। अतः महामना जी सदैव छात्र को निर्देशित एवं नियन्त्रित स्वतंता ही देने के पक्ष में थे।

(ठ) छात्र–अध्यापकः

वर्तमान में उपाध्याय जी के अनुसार छात्र–अध्यापक में पिता–पुत्र जैसे सम्बन्ध तोर दूर , वैर भाव निर्मित हो गया है। अध्यापक सदैव धन ऐंठने में लगा रहता है तो छात्र भी शिक्षकों का अपमान करने में गर्व का अनुभव करते है। महामना जी के अनुसार शिक्षा में नीहित छात्र–अध्यापक सम्बन्ध आदर्शपरक एवं सौहार्द्धपूर्ण है पारस्परिक संघर्षशीलता और कटुता का भाव यहां नहीं है।

(3) उपाध्याय जी एवं महामना जी की शिक्षा के निर्बल पक्ष :

पंडित दीनदयाल जी एवं मालवीय जी की शिक्षा स्वार्थपरता से विलग स्वराज्य प्राप्ति एवं राष्ट्र के परम वैभव की प्राप्ति का साधन है किन्तु फिर भी उनकी शिक्षा में कुछ विसंगतियां तथा दुर्बलताएं नीहित है। जिनका उल्लेख निम्नवत है :–

1. पंडित उपाध्याय जी का " एकात्ममानवाद' अति व्यापक एवं किलिष्ट है जिसको पूरी तरह से समझ पाना और आत्मसात करना साधारण बुद्धि वाले मनुष्य के परे है।

   महामना जी की शिक्षा किसी एक निश्चित क्षेत्र को वयक्त नहीं करती है वरन् प्राचीन भारतीय संस्कृति से लेकर आधुनिक भौतिक विकास तक तथा ज्ञान मीमांशा एवं तत्वमीमांसा से लेकर यर्थाथ के सामाजिक प्रक्रम तक विस्तृत रूप लिए है अतः इतना व्यापक रूप रेखा समझ पाना एक कठिन कार्य है।

2. धर्म ,संस्कृति तथा राष्ट्रीयता तथा हिन्दुत्व की भावना का समावेश को शिखा मे इतना अधिक स्थान दिया है कि वह अतिवादी दर्शन के रूप में अपनी छवि प्रस्तुत करते प्रतीत होते है।

3. उपाध्याय जी द्वारा मातृभाषा हिन्दी के अतिरिक्त किसी भी विदेशी भाषा को स्वीकार न करने की दृढ़ता को लोगों ने उनकी हठधर्मिता मानी है। जबकि महामना जी द्वारा शिक्षा का माध्यम मातृभाषा अपनी पूर्णता को प्राप्त न कर सका आज भी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में अग्रेंजी के माध्यम से ही शिक्षण प्रक्रिया का संचालन होता है अनेक छात्र उच्च स्तरीय ज्ञान विदेशी भाषा और मातृभाषा दोनो में फंसे रहने के कारण वे मानसिक कुंठाओं के शिकार हो जाते है।

4. शिक्षा की अवधारण मे अनुगमन तथा अनुदेशन दोनो ही विधियों को अपनाया है जबकि उनको सामान्य से विशेष की ओर या विशेष से सामान्य की ओर चलना चाहिए था लेकिन उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों के लिए विभिन्न प्रविधियों से कार्य लिया जिसमें विद्यार्थीगण भ्रमित हो जाते है कि वे किस विधि को अपनाएं।

5. हिन्दुत्वादी तथा राष्ट्रवादी मन पश्चिम के विचारों के खिलाफ तो उसकी बुराईयों के कारण था ही लेकिन उसी विदेशियत के कारण ज्यादा था। अतएव ये महापुरूष परिश्चमी की विकृति के प्रति ज्यादा सावधान व मुखर हो गये उन्होंने अतिवादी होकर पश्चिम के पूर्ण विचार के ही मानवीय विकृति में से उत्पन्न विचार घोषित कर दिया।

6. हिन्दू–मुस्लिम सन्दर्भ मे इनकी सोच अग्रतावादी कही जा सकती है। भारतीय मानस ने इस सोच को स्वीकार नहीं किया है और इसी कारण से यह महापुरूष पयाप्ति विवाद के विषय बने रहते तथा उन्हें साम्प्रादायिक संगठन के नेता के नाते जाना पहचाना गया।

7. सामाजिक परिवर्तन की सौभ्य प्रक्रिया लोगों को बहुत कम प्रसन्द आती है संस्कारित करने के मन्दगति वाले काम से लोगों को किसी चमत्कार की आशा नहीं दिखाई पड़ी

8. आर्थिक विचार अधिक उपयुक्त होते हुए भी वास्तविकता से कुछ परे जैसे प्रतीत होते है। अपार धन की तृष्णा, स्वामित्व की भूख, पंजीवाद ललक, अमर्यादित उत्थान, असंतुलित प्रकृति दोहन जैसे मानवीय सहज स्वार्थो को संस्कारों के माध्यम से नियंत्रण करना कठिन कार्य है।

अतः मालवीय एवं उपाध्याय जी के गूढ़तर शिक्षा दर्शन को समझाना भी एक मेधावी मस्तिष्क वाले व्यक्ति का ही कार्य है।

(4) अग्रिम अध्ययन के लिए सुझाव–

महामना एवं उपाध्याय जी के शिक्षा सम्बन्धी बहुआयामी तुलनात्मक अध्ययन से शोधकर्ता ने जो धारण अपने ह्दय में निरूपित की है उसके आधार पर भविष्य में महामना जी एवं उपाध्याय जी से सम्बन्धित अध्ययन हेतु अन्य क्षेत्र प्रस्तुत किये जा सकते है –

1. महामना जी एवं बर्ट्रेण्ड रसल की शैक्षिक विचार धाराओं का तुलनात्मक अध्ययन।
2. महामना जी एवं रवीन्द्र नाथ टैगोर के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन।
3. पडित दीनदयाल उपाध्याय एवं स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन
4. उपाध्याय जी का एकात्ममानवाद और भारतीय शिक्षा–एक अध्ययन।

5. शिक्षा का आधार प्रवर राष्ट्रवाद– एक अध्ययन।

6. राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण और धमाधिारित शिक्षा– एक अध्ययन।

7. भारतीय संस्कृति और आधारित राष्ट्रीय शिक्षा एक अध्ययन।

(5) उपसंहार :–

पंडित दीनदयाल उपाध्याय एवं मदनमोहन मालवीय धवल चरित्र वाले राजनेता एवं विचारक थे। उपाध्याय जी ने राष्ट्रीय स्वंयसेवक संघ के प्रचारक तथा भारतीय जनसंघ के महामंत्री तथा अध्यक्ष के रूप में उन्होंने राष्ट्र की अविराम सेवा की। एकात्ममानववाद उनके भारतीय चिन्तन का ही परिणाम है। जो राष्ट्र का ही नहीं आज सम्पूर्ण मानवता का मार्गदर्शन करने में सक्षम सिद्ध हो रहा है।

महामना जी का शिक्षा दर्शन रूसों के नकारात्मक शिक्षा दर्शन के सव्रथा विपरीत है महामना जी आदर्शवाद का आश्रय लेकर बालक के समक्ष जन्म से ही आदर्श सामने रखने की बात करते है और शिक्षा द्वारा ऐसे चरित्रवान "व्यक्ति" का निर्माण करना चाहते है जो अपने पैरो पर खड़ा हो और अजीविका की भीख मांगते हुए दर–दर की ठोकरे न खाता हों इसके अभाव में ये महापुरूष शिक्षा पर किया गया व्यय निरर्थक मानते थे । यहां हम देखते है महामना एवं उपाध्याय जी शिक्षा के व्यवसहारिक तथा आजीवकोपार्जन परक आधुनिकता शिक्षा व्यवस्था के पक्ष में थे शिखा में अमूल परिवर्तन सम्बन्धी उनके विचार युग की आकांक्षा के अनुरूप प्रगतिशील एवं आधुिनिक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.	ओड.एल.के.	–	शिक्षा के दार्शनिक आधार राजस्थान हिन्दी अकादमी
2.	चतुर्वेदी सीताराम	–	महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय काशी संवत् 1993
3.	तिलक दर्शन	–	भूमिका लेखन मदन मोहन मालवीय
4.	टण्डन पुरूषोत्तम दास	–	महामना मालवीय जी ,जन्म शताब्दी समारोह सन् 1961
5.	द्विवेदी नन्दकिशोर	–	मालवीय जी का जीवन और चरित्र प्रयाग–1918
6.	देवराज	–	विश्व के संत महापुरूष काशी हि0वि0वि0 1964
7.	अभ्युदय	–	समाचार पत्र प्रयाग 1909
8.	आधुनिक भारत के निर्माता	–	पण्डित मदन मोहन मालवीय भारत सरकार दिल्ली 1970
9.	द्विवेदी कृष्णदत्त	–	भारतीय पुर्नजागरण और मदनमोहन मालवीय विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी 1981
10.	मालवीय पद्मकान्त	–	मालवीय जी के लेख, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली 1962

11. मालवीय मदन मोहन — हिन्दू धर्मोपदर्शन सवंत् 1961

12. मालवीय जी के लेख और भाषण(धार्मिक) — वाराणसी 1961

13. वर्मा ईश्वरी प्रसाद — मालवीय जी के सपनों का भारत किताब घर दिल्ली 1967

14. लालमुकुट बिहारी — महामना मदन मोहन मालवीय जीवन और नेतृत्व काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी 1978

15. शरण वासुदेव — महामना मदन मोहन मालवीय जी के लेख और भाषण वाराणसी 1962

16. सुमन रामनाथ — हमारा स्वराज्य राष्ट्र निर्माता, इलाहाबाद 1946

17. अदावल डा0सुबोध — शिक्षा के सिद्धान्त विनोद पुस्तक मंदिर आगरा

18. अवस्थी ब्रह्मदत्त — "राष्ट्रवाद" लोकहित प्रकाशन लखनऊ

19. उपाध्याय दीनदयाल — राष्ट्र चिन्तन राष्ट्रधर्म पुस्तक प्रकाशन लखनऊ।

एकात्म मानव दर्शन— सुरूचि प्रकाश केशव कुन्ज नई दिल्ली—110055

भारतीय अर्थनीति— ' विकास की एक दिशा लोकहित प्रकाशन लखनऊ

भारतीय जनसंघ, सिद्धान्त और नीतियां

लोकहित प्रकाशन लखनऊ

20. कपिल हंस कुमार — अनुसंधान विधियां

हर प्रसाद भार्गव प्रकाशक

4/230 कचहरी घाट आगरा

21. गोवलवरकर माधवराव — विचार नवनीत

सदाशिवदास लोक हित प्रकाशन,लखनऊ

22. चतुर्वेदी आचार्य सीताराम— शिक्षा प्रणलियां और उनके प्रवर्तन प्रकाशक

नन्दकिशोर एण्ड सन्स पोस्ट बाक्स नं017

चौक वाराणसी

23. तोमर लज्जाराम — भारतीय शिक्षा के मूल तत्व, सुरिचत प्रकाशन

केशवकुन्ज झण्डेवाला नई दिल्ली 110055

24. दुबे सत्यानाराण शरतेन्दु— "शिक्षा का विज्ञान तथा तकनीकी " साहित्य

प्रकाश आगरा

25. पण्डित रामशकल — शिक्षा दर्शन, विनोद प्रस्ततक मंदिर आगरा

— विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री विनोद पुस्तक

मंदिर आगरा।

26. पाठक एवं त्यागी — शिक्षा के दार्शनिक सिद्धान्त, विनोद पुस्तक

मंदिर आगरा

27. पाठक पी0डी0 — ''भारतीय शिक्षा की समस्याएं'' विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।

28. भाई योगेन्द्र जीत — ''शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार'' रिसर्च, नई दिल्ली।

29. मधोक बलराज़ — ''शिक्षाशोध''
स्वतंत्रयोत्तर उत्तर प्रदेश में उच्चशिक्षा का
विकास 1950–1975
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय,झाँसी।

30. लाल रमनबिहारी — शिक्षण कला तथा तकनीकी
शिक्षा के दर्शनिक आधार रस्तौगी
पब्लिकेशन शिवाजी रोड मरेठ–250002

32. वर्मा जवाहर लाल — ''शिक्षा शोध''
''महामना मदन मोहन मालवीय के शैक्षिक
विचार '' बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय,झाँसी।

33. विवेकानन्द स्वामी — स्वाधीन भारत। जये हो
श्री रमाकृष्ण आश्रम कानपुर
भारत का भविष्य शिकागों में स्वामी विवेकानन्द
रामकृष्ण मठ नागपुर

34. सरस्वती महर्षि दयानन्द– सत्यार्थ प्रकाश आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट
455 खारी बाबली, नई दिल्ली।

35. सारस्वत डा0मालती – शिक्षा मनोविज्ञान की रूप रेखा

आलोक प्रकाशन,लखनऊ

36. शर्मा डा0महेश चन्द्र – पण्डित दीनदयाल उपाध्याय

कर्तव्य एवं विचार

वसुधा पब्लिकेशन प्रा0लि0

810 अरूणाचल 19 वाराखम्भा मार्ग

नई दिल्ली 110001

37. शर्मा डा0 रामनाथ– शिक्षा दर्शन

रस्तोगी प्रकाशन मेरठ